दो शब्द

अनुमान किया जाता है कि इधर कुछ वर्षों से विद्यार्थियों की व्याकरण से रुचि हटती जाती है, फिर भला भाषा-विज्ञान तो व्याकरण का भी व्याकरण ठहरा। न जाने क्यों भाषा-विज्ञान के विषय में लोगों को कुछ ऐसी धारणा सी हो गई है कि यह बड़ा नीरस विषय है, परंतु वास्तव में देखा जाय, तो यह असत्य है। भाषा-विज्ञान एक रोचक विषय है, परंतु आवश्यकता है उसमें प्रवेश करने की, उससे डर कर दूर भागने से काम नहीं चल सकता। 'शब्दों का इतिहास' उसकी रोचकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

मनुष्य और पशु-पक्षियों का इतिहास तो सभी ने देखा-सुना और पढ़ा है, पर शायद आप सोचते होंगे कि क्या शब्दों का भी इतिहास होता है। इतिहास तो पेड़-पौधे, रुपये-पैसे, कागज-पत्तर, इत्यादि प्रत्येक वस्तु का होता है। जिस प्रकार मनुष्यों का जन्म होता है, वे बढ़ते हैं अनेक प्रकार के काम करते हैं और कोई अधिक और कोई कम नाम पैदा करता है और अंत में मर जाते हैं, उसी प्रकार शब्दों की भी उत्पत्ति होती है, धीरे धीरे उनका चलन बढ़ता है और कोई अधिक और कोई कम उपयोग में आता है, सतत प्रयोग से अनेकों शब्द घिस-घिसा कर परिवर्तित हो जाते हैं और अंत में कोई कोई एकदम मृत-प्राय अथवा नष्ट हो जाते हैं या इतने परिवर्तित हो जाते हैं कि पहचाने तक नहीं जाते।

हमारी भाषा हिंदी में इस प्रकार की शब्द-खोज नहीं के बराबर हुई है और व्युत्पत्यात्मक शब्द-कोषों का नितांत अभाव है। आवश्यक सामग्री के अभाव में इस प्रकार का कोई साहस करना कठिनाई से खाली नहीं है। इस पुस्तक में शब्दों को

उत्पत्ति, उनकी रचना तथा निर्माण का ढंग, उनमें होने वाले परिवर्तन और उनका कारण, इत्यादि प्रमुख विषयों की व्याख्या की गई है और हिंदी साहित्य तथा बोलियों में प्रयुक्त होने वाले अनेकों शब्दों की, महीनों तथा दिनों की, और भारतवर्ष के मनुष्यों तथा नगरों के नामों की व्युत्पत्यात्मक व्याख्या करके उनके इतिहास की खोज करने का प्रयत्न किया गया है। हमारी भाषा हिंदी की पाचन शक्ति अत्यंत तेज है और वह प्रत्येक भाषा के शब्दों को अपना कर बराबर पचा कर अपने में मिलाती गई है, अतः उसमें अंग्रेजी, अरबी-फ़ारसी, तुर्की, डच-फ्रांसीसी, पुर्तगाली, द्रविड़, इत्यादि अनेकों भाषाओं के शब्द आकर उसी प्रकार मिल गए हैं और उसका अंग बन गए हैं जिस प्रकार गंगाजल में अनेकों नदी-नालों का जल आकर मिल जाता है और गंगा-जल कहलाता है। अतः होटल, कर्फ़्यू, बिस्कुट, बॉवर्ची, कमीज, लंकलाट, बायकाट, लाइब्रेरी इत्यादि ऐसे शब्द भी ले लिए गए हैं जो आज हमारी हिंदी का अंग बन चुके हैं और जिन्हें उससे पृथक करना कठिन है। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि 'शब्दों का इतिहास' साहित्यिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, इत्यादि अनेक विषयों के कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति तथा इतिहास का एक उदाहरण मात्र है, अभी इस विषय में बहुत कुछ खोज और कार्य करने की आवश्यकता है।

यदि यह पुस्तक विद्यार्थियों तथा पाठकों का कुछ उपकार कर सकी और उन्हें इस विषय में आगे खोज करने के लिये उत्साहित कर सकी, तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा।

—लेखक

विषय-सूची

१
शब्दों का इतिहास

आदमियों का इतिहास तो सभी कोई पढ़ते-लिखते और जानते हैं, परंतु शब्दों के इतिहास का शायद बहुतों ने नाम भी न सुना होगा। जिस प्रकार किसी जाति अथवा मनुष्य का प्राचीन इतिहास ज्ञात करना कठिन है, उसी प्रकार शब्दों का प्राचीन इतिहास जानना भी सहज काम नहीं है। शब्दों की व्युत्पत्ति तथा इतिहास खोजना भाषा-विज्ञान का विषय है। कुछ लोग भाषा-विज्ञान को एक नीरस विषय समझते हैं और घबड़ा कर उससे दूर भागते हैं, परंतु वास्तव में देखा जाय, तो भाषा विज्ञान एक अत्यंत ही मनोरंजक विषय है और उसमें भी शब्दों का इतिहास जानना तो मनुष्य के इतिहास से किसी प्रकार भी कम मनोरंजक नहीं है। जिस प्रकार एक ही माता-पिता के दो बेटे अथवा बेटियाँ एक से नहीं होते, कोई अच्छा और कोई बुरा होता है, एक ही मनुष्य आज सुचरित्र और कल दुश्चरित्र दिखाई देता है, एक ही मनुष्य एक स्थान में अच्छा और दूसरे में बुरा समझा जाता है, ठीक इसी प्रकार एक ही तत्सम शब्द से निकलने वाले दो तद्भव शब्दों के अर्थ में बहुत

अंतर हो जाता है, उदाहरणार्थ भद्दा और भला दोनों ही तत्सम शब्द भद्र से निकले हैं, परंतु इन दोनों के अर्थ पूर्णतः एक दूसरे के विपरीत हैं; गो तथा महिष संस्कृत में पुल्लिंग हैं, परंतु गाय भैंस इनके तद्भव रूप हिंदी में स्त्री लिंग हैं, क्षीर के अर्थ दूध हैं, परंतु इसके तद्भव खीर के अर्थ दूध के पके हुए चावल हैं, कलश मिट्टी के गगरे को कहते हैं, परंतु कलसा तांबे-पीतल के गगरे को कहते हैं, विभूति ऐश्वर्य को कहते हैं, परंतु भभूत राख को कहते हैं, पुंगव का अर्थ श्रेष्ठ है, परंतु इसके तद्भव 'पोंगा' के अर्थ बोली में बुद्धू हैं, भद्र के अर्थ 'सभ्य' है, परंतु भोंदू बोली में गावदी या बुद्धू को कहते हैं, एक ही शब्द एक काल में एक और दूसरे में दूसरे अर्थ देता है जैसे 'महा-ब्राह्मण' शब्द के अर्थ भास के नाट्य-काल तक 'उच्च कोटि का ब्राह्मण' थे, परंतु आज कल 'कुदान लेने वाला कटहा ब्राह्मण' हैं, अंग्रेजी में कांसटेबिल (Constable) एक बड़े सरकारी अफसर को कहते थे, परंतु आजकल एक साधारण सिपाही को कहते हैं, दर्शन के अर्थ केवल देखना मात्र थे, परंतु आज-कल किसी बड़े साधु-महात्मा अथवा देवी-देवता के देखने के लिए आता है, क्वीन (queen) से साधारण स्त्री मात्र का बोध होता था, परंतु आजकल 'रानी' का बोध होता है, पत्र पत्ते मात्र का सूचक था, परंतु आजकल चिट्ठी का सूचक है, कर्फ्यू (Curfew) के अर्थ फ्यूडल काल (feudal period) तक रोशनी आदि ढकना या बुझाना थे, परंतु आजकल 'अपने को घर में छिपाना' है, अन्न से आशय खाद्य पदार्थ से था, परंतु

आजकल केवल अनाज को कहते हैं, डीयर (deer) से आशय पशु मात्र का था, परंतु आजकल केवल हिरन के लिए आता है, ईद के अर्थ 'आनंद' हैं, परंतु आजकल मुसलमानों का एक त्यौहार विशेष है, श्वशुर अथवा श्वश्रू केवल वहू के सास ससुर को कहते थे, परंतु आजकल वहू तथा पति दोनों के सास-ससुर को कहते हैं, पेन (pen) केवल 'पर के कलम' को कहते थे, परंतु आजकल लोहा, लकड़ी आदि सब प्रकार के कलम को कहते हैं; एक ही शब्द एक स्थान में एक अर्थ देता है और दूसरे में दूसरा; उदाहरणार्थ 'भैया' संयुक्त प्रांत में भाई अथवा बड़े लड़के को कहते, परंतु गुजरात में हट्टे कट्टे संयुक्त प्रांतीय नौकर को कहते हैं, होटेल (Hotel) फ्रांस में महल को कहते हैं, परंतु भारतवर्ष में भोजनालय को कहते हैं, यहाँ स्वर्गीय पं० जगन्नाथ प्रसाद जी चतुर्वेदी का एक उदाहरण देना अनुचित न होगा, "अगर बिहार में 'हाथी विहार करती है तो पञ्जाब में 'तारें' आती हैं और संयुक्त प्रांत के काशी-प्रयाग में लोग 'अच्छी शिक्षा' मारकर 'लम्बी सलामें' करते हैं। अगर बिहार में 'दही खट्टी' होती है तो मारवाड़ में 'बुखार चढ़ती' है, 'जनेऊ उतरती' है और कानपुर के मैदान में 'बूँद गिरता' और 'रामायण पढ़ा जाता' है। बिहार में 'हवा चलता' है तो झालरापाटन में 'नाक काटता' हैं और मुरादाबाद में 'गोलमाल मचती' है।" एक ही शब्द एक भाषा में एक अर्थ देता है और दूसरी में दूसरे जैसे, अरबी में 'मेहतर' के माने बजुर्ग तथा संस्कृत में महत्तर के अर्थ 'दो में बड़ा'

और चितराल में शहजादों (राजपुत्रों) की उपाधि है, परंतु हिंदी में भंगी को कहते हैं, संस्कृत में 'दास' का अर्थ लकड़ी है, परंतु हिंदी में 'मद्य' है, वेटा के अर्थ हिंदी तथा गुजराती में 'पुत्र' हैं, परंतु बंगला तथा बोली में नीच वृत्ति में प्रयुक्त होता है, मुग्ध के अर्थ संस्कृत में 'मूढ़' हैं, परंतु बंगला तथा हिंदी में 'अत्यंत प्रसन्न' हैं, साहस संस्कृत में चोरी, डाका, हत्या आदि के लिए हिम्मत करने के लिए आता है, परंतु हिंदी तथा बंगला में 'अच्छे कार्य के लिए हिम्मत करने' के लिए आता है, आदर के अर्थ हिन्दी में इज्जत हैं, परंतु बंगला में 'प्रेम' है, 'घाम' हिन्दी में धूप को परंतु बंगला में पसीने को कहते हैं, गोशाला संस्कृत तथा हिन्दी में गायों के निवास स्थान को कहते हैं, परंतु फारसी में गाय के बच्चे को कहते हैं, हुक्का अरबी में डिब्बे को परंतु हिन्दी में चिलम तमाखू के पीने के हुक्के को कहते हैं, 'पारा' फारसी में टुकड़े को, परंतु हिंदी में एक धातु विशेष को कहते हैं, चिट (Chit) अंग्रेजी में सुंदर छोटे से बच्चे को परंतु हिंदी में कागज के टुकड़े को कहते हैं, गजट (Gazette) अंग्रेजी में समाचार पत्र को कहते हैं, परंतु इटैलियन में १६ वीं शताब्दी में वेनिस का ¾ पेंस का एक सिक्का था, क्लाक (Clock) अंग्रेजी में घड़ी को परंतु गुजराती में घंटे को कहते हैं, जामा फारसी में कपड़े को परंतु हिंदी में विवाह के समय पहनने का चुन्नटदार घेरे का एक प्रकार का कपड़ा होता है, चमन फारसी में क्यारी को परंतु हिन्दी में बागीचे को कहते हैं, गंगा हिंदी में एक नदी

विशेष है परंतु मराठी में प्रत्येक नदी को कहते हैं। अब हम यहाँ पर कुछ शब्दों के जीवन-वृत की विशेष रूप से विवेचना करेंगे और बतायेंगे कि उनका निर्माण तथा नाम करण किस प्रकार हुआ है।

बुलबुली:—संभवत: आप में से बहुत से तो इसका अर्थ भी न जानते होंगे। इसका अर्थ है 'सिर पर के लम्बे लम्बे बाल'। यह शब्द संभवत: निम्न श्रेणी के कुछ आदमी नौकर-चाकर अथवा गाँव-गिराँव के कुछ आदमी प्रयोग करते हैं। इस शब्द का निर्माण भारत में अंग्रेजी राज हो जाने पर उस समय से हुआ है जब से लोग अंग्रेजों की देखा-देखी माथे पर लम्बे लम्बे बाल रखने लगे। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या इसके पूर्व भारतवर्ष में लोग लम्बे लम्बे बाल रखते ही न थे। अवश्य रखते थे अपितु वे तो इससे भी बड़े बड़े रखते थे। मुसलमान काल में लोग पट्टे रखते थे, लखनऊ, देहली आदि पश्चिमी नगरों में अब भी कोई कोई आदमी पट्टे रक्खे हुए दिखाई देते हैं; तो फिर उन्हें बुलबुली क्यों नहीं कहते थे? पट्टे रखने वाले मांग निकाल कर बाल सिर के पीछे की ओर ले जाते थे और गर्दन के पास ले जाकर कटा डालते थे और उनके सिरों को घुमावदार कर लेते थे, परंतु अंग्रेजी काल में लोग सिर के पीछे के बाल कटा देते हैं और आगे की ओर माथे के ऊपर रखते हैं। यह एक भाषा-वैज्ञानिक नियम है कि प्राय: चीजों के नाम सादृश्य पर रक्खे जाते हैं। इस प्रकार के आगे की ओर सिर पर बाल बुलबुल के होते हैं,

अतः गाँव-गिराँव के अशिक्षित लोगों ने इसी के सादृश्य पर अंग्रेजी वालों का नाम भी 'बुलबुली' रख दिया।

बिल्टी—यह बिल+टी दो शब्दों के संयोग से निर्मित हुआ है। 'बिल' (Bill) अंग्रेजी शब्द है और 'टी' बंगला का पर-प्रत्यय है। बिल का अर्थ है 'लेन-देन का हिसाब अथवा हिसाब का पर्चा' और 'टी' अथवा 'टा' बंगाली लोग प्रायः संख्या सूचक शब्दों के अंत में ठीक इसी प्रकार जोड़ देते हैं जैसे हिंदी में ठें अथवा ठो जोड़ देते हैं। जैसे प्रयाग में एक ठो, दो ठो आदि कहते हैं वैसे ही बंगाल में एकटी आदि कहते हैं। संभवतः आरंभ में बंगालियों ने बिल में टी का संयोग किया होगा, जो कि बाद में सतत प्रयोग से 'बिलटी' एक पृथक शब्द ही बन गया और उसके माने 'रेल की रसीद' हो गए। धीरे धीरे शीघ्र उच्चारण के कारण 'बिलटी' शब्द 'बिल्टी' कहलाने लगा।

खटराग—इसका निर्माण दो शब्दों के संयोग से हुआ है, खट+राग। खट सं० शब्द षट् का अपभ्रंश है और इसके माने है 'छः' और राग के अर्थ है 'गाना'। अतः खटराग के अ[illegible] हुए 'छः राग अर्थात् छः प्रकार के राग या गाने' परन्तु 'खटराग' इस माने में तो प्रयुक्त होता नहीं, खटराग के व्यवहारिक अर्थ तो 'झंझट' हैं। अब प्रश्न यह है कि यह शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त होने कैसे लगा। गाने के छः राग तो अवश्य होते हैं, परंतु साथ ही छत्तीस रागनियाँ भी होती हैं। गाना है तो बड़ी सुंदर, मधुर तथा कर्ण-प्रिय

वस्तु, परंतु आपने देखा होगा कि उसके स्वर निकालने में बड़ा समय लगता है। गाने का आनंद वही ले सकता है जिसके पास समय हो और निश्चिंत होकर बैठ कर सुन सके। भला बेचारे गरीब किसानों अथवा गांव-गिरांव वालों के पास, जो कि दिन भर खेती-बाड़ी में लगे रहते हैं, इतना समय कहाँ कि वे सब काम-काज छोड़ कर चुपचाप बैठे-बैठे सब राग-रागनियाँ निकाला करें अथवा गाना सुना करें। वे एक ही बैठक में पट्राग और उनकी रागनियाँ नहीं सुन सकते थे और उनको घबड़ाकर बीच ही में उठना पड़ता था। फलतः धीरे-धीरे उनको पट्राग से अरुचि होने लगी। समयोपरांत यह अरुचि इतनी बढ़ गई कि पट्-राग मुहावरे के रूप में प्रयुक्त होने लगा और जब उन्हें किसी भी काम के पूरा होने में झंझट दिखाई देता था, तो वे कह बैठते थे, 'हमारे इतना खटराग कौन करे' अथवा 'इसमें तो बड़ा खटराग है'। यहाँ तक कि अच्छे अच्छे गवैये तक इस बात को इसी अर्थ में प्रयोग करने लगे। अब केवल एक प्रश्न रह गया कि 'पटराग' 'खटराग' कैसे हो गया। संस्कृत से 'प' हिंदी में आने पर प्रायः 'ख' हो जाता है जैसे शुष्क से सूखा, पुष्कर से पोखर। इसके अतिरिक्त कुछ समय पूर्व तक संस्कृत 'ष' का उच्चारण ख की भाँति होता रहा है, उदाहरणार्थ बूढ़े तथा ग्रामीण लोग अब भी भाषा को भाखा और मनुष्य को मानुख कहते हैं। इसी प्रकार पटराग भी खटराग हो गया होगा।

पगडंडी—में भी समास है और यह पग+डंडी के संयोग से बना है पग शुद्ध तत्सम् रूप में है और इसका अर्थ है पैर और डंडी बना है दण्ड से जो कि अपभ्रंश है संस्कृत दण्ड का जिसका अर्थ है डंडा। संस्कृत-हिंदी ध्वनि नियम के अनुसार सं० द हिंदी में ड में परिवर्तित हो जाता है जैसे दंशन से डसना, दाह से डाह, दोरक से डोरा, इत्यादि। दण्ड अथवा डंडा मोटा सोंटा होता है और डंडी पतली छड़ी को कहते हैं। अतः पगडंडी के अर्थ हुए पैर की डंडी अर्थात् पैर द्वारा बनी हुई डंडी जैसी वस्तु। मैदान, ऊसर, खेत अथवा घास के मैदान में लोगों के चलने से जो पतला पतला सफेद सा मार्ग बन जाता है वह दूर तक पड़ी हुई एक पतली डंडी के समान प्रतीत होता है। चूँकि यह मार्ग चौड़ी चौड़ी सड़कों अथवा पतली पतली गलियों की अपेक्षा बहुत ही पतला होता है, अतः इसकी डंडी से तुलना की गई है और इसी सादृश्य पर इसे डंडी कहने लगे और चूँकि यह डंडी पग द्वारा बनती है, अथवा इस पर केवल पैदल चलने वाले यात्री ही चल सकते हैं इक्के घोड़े तांगे मोटर आदि नहीं, अतः इसे पगडंडी कहने लगे।

तिलंगा—शब्द का निर्माण हुआ तैलंग से। तैलंग नाम था आंध्र देश का। अतः तिलंगा का अर्थ हुआ तैलंग देश का। तिलंगा का अर्थ है फौजी सिपाही और उत्तरी भारत के कुछ गांवों में यह शब्द अब भी प्रयोग होता है। अब प्रश्न यह है कि 'तिलंगा' एक सैनिक मात्र के लिए कैसे प्रयुक्त होने

लगा और वह भी प्रत्येक जगह के सैनिक के लिए केवल तैलंग के ही नहीं। बात यह है कि अंग्रेज भारतवर्ष में आए, तो उन्होंने सर्व प्रथम मद्रास में अपना अधिकार प्राप्त किया। तत्पश्चात् वे तैलंग देश के मद्रासियों की सेना लेकर उत्तरी भारत की ओर बढ़े। चूँकि इनकी सेना में अधिकांश सिपाही तैलंग देश के थे, अतः केवल तैलंग के सिपाहियों को ही नहीं अपितु अन्य सिपाहियों को भी तैलंगो कहने लगे। धीरे धीरे सतत प्रयोग से प्रत्येक सिपाही को ही तैलंगो कहने लगे। बाद में मुख-सुख के कारण घिस-घिसा कर तैलंगो शब्द बोली में तिलंगा हो गया।

पगड़ी :—कश्मीर, पंजाब, राजपूताना, काठियावाड़, गुजरात, महाराष्ट्र आदि पश्चिमी प्रांतों में साफा अथवा पगड़ी बाँधने का रिवाज अधिक है। साफा सिर पर बार बार बाँधना पड़ता है और सिर को मुण्ड भी कहते हैं, अतः साफे को मुंडासा भी कहते हैं। पगड़ी बंधी बंधाई रहती है और आवश्यकता पड़ने पर सिर पर रक्खी जा सकती है। पगड़ी शब्द पग में 'ड़ी' प्रत्यय जोड़ने से बना है। अब प्रश्न यह है कि सिर पर धरने की वस्तु पग अर्थात् पैर सूचक शब्द से बनी कैसे? पगड़ी पैर के घुटने पर बाँध कर बनाई जाती है, अतः इसे पगड़ी कहने लगे।

गड़रिया :—गड़रिए का संबंध भेड़ बकरियों से है। उसका काम चौबीस घंटे उनको चराना, दुहना, उनका ऊन काटना आदि है। यही उसका एक मात्र व्यवसाय है। भेड़

को गाडर भी कहते हैं, जैसा कि तुलसीदास जी की निम्न लिखित चौपाई से प्रकट होता है—

गाडर लाए ऊन को,
लागी चरन कपास ॥

अतः गड़रिया शब्द गाडर द्वारा बना है।

केंकुरी :—हाथों, पैरों को समेट कर छाती से लगा कर बैठने को केंकुरी मार कर बैठना कहते हैं। गाँव - गिराँव के बेचारे निर्धन मनुष्य प्रायः इस प्रकार जाड़ों में कपड़ा ओढ़ने-बिछाने को न होने के कारण केंकुरी मार कर बैठा करते हैं। इस शब्द का निर्माण 'केंकड़ा' शब्द द्वारा हुआ है। केंकड़ा एक पानी का जानवर है और नदियों तथा समुद्रों में पाया जाता है। यह सदैव अपने हाथों पैरों को सिकोड़ कर बैठता है। अतः इसके सादृश्य पर आदमी के पैर समेट कर बैठने को भी केंकुरी कहने लगे।

दाढ़ी :—मुँह पर निकल आने वाले बालों को दाढ़ी कहते हैं। चूँकि ये बाल दाढ़ों के ऊपर की खाल पर ही होते हैं, अतः इन्हें दाढ़ी कहते हैं। कुछ अशिक्षित तथा कम पढ़े लिखे आदमी मुख-सुख के लिए उसमें सावर्ण्य नियम के अनुसार ढ के सादृश्य पर द को ड में परिवर्तित कर लेते हैं और दाढ़ी को डाढ़ी भी कहने लगते हैं।

कंटोप : - यह शब्द कान+तोप के समास द्वारा निर्मित हुआ। अतः जो वस्तु कान को तोप ले अर्थात् ढक ले वह कानतोप कहलायगी। संभव है प्रारंभ में अपने शुद्ध रूप

में कंटोप शब्द कानतोप ही रहा हो और बाद में धीरे धीरे शीघ्रता, मुख-सुख, सततप्रयोग अथवा अज्ञान वश कंटोप हो गया हो।

चौवच्चा :—इसे चहवच्चा भी कहते हैं। इसका शुद्ध रूप चाह बच्चा है। चाह बच्चा फारसी का शब्द है। यह चाह और बच्चा दो शब्दों के मेल से बना है। चाह का अर्थ है कुंड और बच्चा का अर्थ है छोटा। अतः चाह बच्चा का अर्थ हुआ छोटा कुंड। यही कारण है कि छोटे से पानी के कुंड को चाह बच्चा, चहबच्चा, चौवच्चा, अथवा चरही कहते हैं।

पगहा :—का अर्थ है पगवाला। प्रारंभ में इस शब्द का प्रयोग उस रस्सी के लिए होता था जिससे जानवर के पैर बांधे जाते थे, परंतु बाद में इसका अर्थ-विस्तार हो गया और यह पैरों के अतिरिक्त गले में बांधी जाने वाली रस्सी के लिए भी प्रयुक्त होने लगा।

कटरा :—यह शब्द दो शब्दों के सम्मिश्रण द्वारा निर्मित हुआ है—काठ+घर। काठ-घर का अर्थ है काठ का घर अथवा वह स्थान जहाँ काठ का घर हो। काठघर में प्रथम क के पश्चात् 'आ' का लोप हुआ और कठघर बन गया। मुरादाबाद तथा प्रयाग के कठघर नामक मोहल्लों में जहाँ काठ के घर अब तक पाए जाते हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। बाद में संभवतः लकड़ी के अभाव अथवा दृढ़ता आदि अन्य किसी कारण से लकड़ी का थोड़ा सा हिस्सा ही मकानों में

लगने लगा अथवा जगह घेरने के लिए जिससे वहाँ कोई आने न पावे, लकड़ी की छोटी दीवाल सी ही बनने लगी जिसे कटहरा कहते हैं। यह कटघर शब्द से बना—इसमें ठ का ट में और घ का ह में परिवर्तन हो गया और अंत में 'आ' का आगम हो गया। बाद में धीरे धीरे 'ह' का लोप हो गया और कटरा शब्द बन गया। प्रयाग का कटरा अथवा लखनऊ का रानी कटरा इसी प्रकार बने हैं। संभव है किसी समय यहाँ सरकारी दफ्तर आदि के लिए काठ का घर बना रहा हो।

रुपया:—सं० शब्द 'रौप्य' या हि० शब्द 'रूपा' से निकला है, जिसके मानी हैं चाँदी। इसका चलन मुगल काल में प्रारंभ हुआ। जब ईस्ट इंडिया कम्पनी के भारत वर्ष में पैर जम गए, तो उन्होंने अपने अधिकृत सूबे बंगाल में अपना सिक्का चलाया। सब से पहला चांदी का सिक्का लार्ड कार्नवालिस ने १७६३ ई० में बंगाल में चलाया। इस पर शाह आलम सन १६ छपा है। चूंकि यह रुपया कल अर्थात् मशीन से ढाला गया था, इसलिए इसे 'कलदार रुपया' कहते थे। बाद में ज्यों ज्यों रुपये के नये नये सिक्के निकलते गए, त्यों त्यों 'कलदार रुपये' से कलदार शब्द पृथक होता गया, यहाँ तक कि 'कलदार' और 'रुपया' दो पृथक शब्द होकर रुपये के दो प्रकार के क्रमशः पुराने और नये चलन के सिक्कों के द्योतक हो गए। बुँदेलखंड में कुछ बूढ़े आदमी अब भी मोटे पुराने चलन के रुपये को कलदार और नए

चलन के रुपये को रुपया कहते हैं। धीरे धीरे ज्यों ज्यों पुराने चलन के मोटे रुपये का लोप होता गया त्यों त्यों कलदार शब्द का भी लोप होता गया और नये पुराने सब प्रकार के रुपये को रुपया ही कहने लगे।

पत्र :—का अर्थ पत्ता है जैसे बेल पत्र या पत्री अर्थात् बेल के पत्ते, परंतु आजकल जन्म-पत्री और चिट्ठी-पत्री में भी प्रयोग होता है और इसके साधारण अर्थ खत हैं। बात यह है कि प्राचीन काल में जब कागज का आविष्कार नहीं हुआ था तो चिट्ठी तथा अन्य आवश्यक सूचनाएँ, अदालती कागज आदि पेड़ की छालों, पेड़ के पत्तों, ताँबे के पत्रों पर लिखे जाते थे। भारत में प्राचीन काल के अनेकों लेख भोज पत्र और ताम्र-पत्र पर लिखे हुए मिलते हैं। धीरे धीरे चिट्ठी को ही पत्र कहने लगे और आज कागज का आविष्कार होने पर भी उसे पत्र ही कहते हैं, यद्यपि वह पेड़ के पत्ते पर नहीं लिखा जाता।

२

शब्दों की रामकहानी

कहानी-प्रेम तो मनुष्य मात्र में बहुत प्राचीन काल से ही चला आता है। बच्चे से बूढ़े तक सब को कहानी प्रिय है। बच्चों को परियों तथा जानवरों की कहानियाँ अच्छी लगती हैं और वे रात को अपनी बूढ़ी अम्मा-दादी के पास बैठकर उन्हें बड़े ध्यान से सुनते हैं। जवानों को देश-विदेश भ्रमण की कहानियाँ तथा प्रेम-कथाएँ मुग्ध करती हैं और बुड्ढों को जो अब हाथ-पैर से बुढ़ापे के कारण हार गए हैं अपनी जवानी के किस्से और दुनियाँ के अपने अनुभव सुनाने में ही आनंद आता है। कहानी भी कई तरह की होती हैं, परियों की कहानी, भूतों की कहानी, जानवरों की कहानी, शैतानों की कहानी जैसे नटखट पांडे, ऐय्यार-मक्कारों की कहानी जैसे जासूसी उपन्यास, आदमियों की कहानी जैसे राजा-रानी की कहानी, मूर्खों की कहानी जैसे शेख चिल्ली की कहानियाँ, इत्यादि। इसी प्रकार कागज की कहानी, पैसे की कहानी, नगर की कहानी, इत्यादि भी होती हैं। सारांश यह है कि प्रत्येक जीव-जंतु तथा वस्तु

की अपनी एक अलग कहानी है। इतना ही नहीं, अपितु प्रत्येक शब्द तक की अपनी अपनी कहानी है। मनुष्यों की भाँति शब्दों के पीछे भी एक इतिहास है। जिस प्रकार मनुष्य पैदा होता है, उसका नाम करण होता है, घर-बाहर जाने, छोटे-बड़े होने पर अदलता-बदलता है, बचपन का नीलू बड़े होने पर डा० नील कुमार भट्टाचार्य हो जाता है, इसी प्रकार शब्द भी उत्पन्न होते हैं और समय अथवा स्थिति के अनुसार उनके रूप तथा अर्थ दोनों में अनेक कारणों से परिवर्तन होते रहते हैं। एक दो उदाहरणों से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। 'देवानां प्रिय' का अर्थ 'देवताओं का प्यारा' है और तीसरी शताब्दी पूर्व तक यह बौद्ध महराजाओं की उपाधि थी, अशोक के साथ भी इसका प्रयोग मिलता है, परंतु बौद्ध धर्म की अवनति होने पर कात्यायन तथा पतञ्जली के समय में ब्राह्मणों ने विरोध के कारण इसमें 'मूर्ख' शब्द जोड़ दिया, जिससे इसके अर्थ गिर कर 'मूर्ख' हो गए। इसी प्रकार महा-ब्राह्मण भास के नाट्य काल तक ऊँची जाति के ब्राह्मण को कहते थे, परंतु बाद में कुकर्म करने तथा दान-कुदान सब लेने के कारण इनको लोग घृणा की दृष्टि से देखने लगे और इसके अर्थ इतने गिर गए कि इससे लोग सब से निकृष्ट कोटि का गिरा हुआ कट्टहा ब्राह्मण समझने लगे। भूत शब्द भू धातु से बना है जिसका अर्थ है 'होना'। इससे 'भूत' बना जिसका अर्थ है 'प्राणी', जैसे अशोक के लेखों में 'सर्व भूतानां' आया है जिसका अर्थ है 'समस्त प्राणियों के लिए', परंतु आजकल इसके अर्थ है 'प्रेत'

अर्थात् मरे हुए प्राणी की आत्मा। अब हम आप को कुछ शब्दों की रामकहानी सुनायेंगे।

(१) *कमीजः*—यह प्रारंभ में स्त्रियों के पहनने का एक वस्त्र था जो कि किसी कपड़े के भीतर पहना जाता था जैसे आजकल कमीज आदि के नीचे बनियान पहना जाता है। उस समय इसे शेमीज कहते थे। चौथी शताब्दी में इसे सैनिक भी पहनने लगे। बाद में रोमन सैनिकों का यह एक मुख्य पहनावा हो गया और जिन जिन देशों को उन्होंने जीता उनमें भी यह पहनावा फैल गया। जब यह पहनावा अरब में आया, तो इसका अरबी-लैटिन की भाषा संबंधी विशेषता के कारण नाम बदल गया। लैटिन 'श' अरबी में प्रायः 'क' और 'ज' 'स' हो जाता है। अतः इसका नाम 'शेमीज' से 'कमीस' हो गया। बाद में संभवतः बोलने की सुविधा के लिए मुख-सुख के कारण इसे 'कमीस' से 'कमीज' कहने लगे। वहाँ से यह शब्द और पहनावा भारतवर्ष में आया और 'कमीज' कहलाने लगा। अभी तक तो कमीज कोट के नीचे ही पहनी जाती थी, परंतु इधर कुछ दिनों से कपड़े की कमी के कारण लोग इसे अकेला भी पहनने लगे हैं। यही कारण है कि इधर सुविधा के लिए आधी बाँह और खुले गले की कमीज भी चल पड़ी है।

(२) *धीः*—धी शब्द संस्कृत 'दुहिता' से निकला है। कभी कभी संस्कृत 'द' हिंदी में 'ध' हो जाता है। अतः दुहिता का 'धी' हो जाता तो ठीक है, लेकिन अब प्रश्न यह है कि दुहिता शब्द के अर्थ पुत्री कैसे हुए। दुहिता बना है दुह् धातु से और

दुहिता के अर्थ हुए 'दूध दूने वाली'। प्राचीन काल में गाय-बैल आर्यों की एक विशेष संपत्ति थी और घर घर गाय पालने का चलन था। घर की स्वामिनी तो प्रायः घर के काम-धंधों में व्यस्त रहती थी और गाय का दूध घर की लड़कियाँ दुह लिया करती थीं। धीरे धीरे दूध दुहना लड़की का एक कर्त्तव्य समझा जाने लगा और उसे 'दूध दूहने वाली' अर्थात् 'दुहिता' ही कहने लगे। इस प्रकार नाम पड़ना कोई नई बात नहीं है। व्यवसाय के अनुसार नाम पड़ने के उदाहरण आज भी अनेक पाए जाते हैं जैसे हम जूते की दुकान करने वाले को मोची, कपड़ा सीने वाले को दर्जी, मिठाई वेचने वाले को हलवाई, कपड़ों को धुलाई करने वाले को धोबी, उर्दू पढ़ाने वाले को मौलवी, संस्कृत पढ़ाने वाले को पंडित जी कहने लगते हैं, चाहे वे वास्तव में मोची, दर्जी, हलवाई, धोबी, मौलवी, पंडित न भी हों।

(३) <u>भाई</u>:—'धी' को भाँति भाई की भी कहानी है। 'भाई' संस्कृत <u>भृत्य</u> से निकला है। सं० भृ धातु के अर्थ हैं 'धारण करना या ले जाना'। जिस प्रकार घर की लड़की दूध आदि दुह कर अपनी माता को घर के काम धंधे में सहायता किया करती थी, उसी प्रकार छोटा लड़का अपने बड़े भाई पिता आदि की सेवा किया करता था और उनके लिए सौदा-सुलफ, पान-पत्ता लाने का काम किया करता था। अतः वह घर की चीज-वस्तु लाने ले जाने वाला एक प्रकार का नौकर था। यही कारण है कि 'भृत्य' के अर्थ जिससे 'भाई' निकला है दास

या नौकर भी है। अतः भृत्य का प्रयोग घर के लड़के के लिए होने लगा और दूसरे भाई बहिन उसे भृत्य कहने लगे। इस प्रकार भृत्य भाई का सूचक हो गया। यही बात अन्य देशों में भी पाई जाती है। अंग्रेजी Brother bear से, लैटिन frater fu से, गौथिक Brother bairan से बने हैं जिनके अर्थ हैं ले जाना।

(४) *बैरा*—भाई के साथ ही साथ 'बैरा' का इतिहास दे देना अनुचित न होगा। साहबों का 'बैरा' वास्तव में बैरा नहीं Bearer है जिसके अर्थ हैं 'लाने ले जाने वाला', परंतु मालूम होता है कि साहबों के बंगलों में रहने वाले अंग्रेजी न जानने वाले लोग असली शब्द को न समझ कर Bearer को बैरा बैरा कहने लगे। बस साहब के खास सेवक को बैरा कहने लगे।

(५) *खिड़की*—मकान में हवा तथा प्रकाश आने का एक छोटा सा द्वार है। जिस प्रकार मकान में खिड़की होती है, उसी प्रकार शरीर में आंख है। इन दोनों में बहुत समानता है। अतः खिड़की और आंख में विशेष संबंध है। यहाँ आप देखेंगे कि खिड़की में आंख सदैव किसी न किसी रूप में छिपी हुई है। संस्कृत में खिड़की को गवाक्ष कहते हैं और गवाक्ष बना है गो और अक्ष से, गो माने गाय और अक्ष अथवा अक्षि माने आँख अर्थात् गाय की आंख के समान। प्राचीन काल में भारतवर्ष में सुन्दरता के कारण गाय के मुख के समान खिड़कियाँ बनाई जाती थीं और उनके छिद्र गाय की

आँख के समान प्रतीत होते थे। अतः उन्हें 'गवाक्ष' कहने लगे। 'गवाक्ष' को संस्कृत में 'खटक्किका' भी कहते हैं। संभव है उसी खिड़की निकला हो, परंतु वास्तव में खिड़की देशी भाषा का शब्द है। गौथिक में खिड़की को 'औगा डोरा' कहते हैं जिसके अर्थ हैं eye-door अर्थात् आँख के समान दरवाजा। खिड़की का संबंध वायु से भी है, अतः खिड़की को संस्कृत में 'वातायना' भी कहते हैं जिसके अर्थ हैं वायु मार्ग अर्थात् हवा को लाने वाला। अंग्रेजी में भी इसे हवा से संबंधित किया गया है। window बना है wind और eye से जिसका अर्थ है 'हवा की आँख'।

(६) *बौना*—इसका संबंध पौराणिक कहानी से है। जब राजा बलि ने अश्वमेध यज्ञ किया तो इंद्र को डर हुआ कि कहीं यह मेरा इंद्रासन न छीन ले। उन्होंने विष्णु भगवान से जाकर कहा। विष्णु भगवान यज्ञ की समाप्ति के समय बावन अंगुल का छोटा रूप बना कर बलि के यहाँ गए और दान में तीन पग धरती माँगी। जब बलि ने वचन दे दिया, तो भगवान ने अपना शरीर बढ़ाया और विशाल रूप धारण किया और दो पैरों में स्वर्ग और मृत्युलोक नाप लिए। जब तीसरे के लिए जगह न रही, तो राजा बलि ने अपना सिर झुका दिया और पीठ नपवा दी। तब से 'बावन' अवतार प्रसिद्ध हो गया। धीरे धीरे 'बावन' एक पृथक शब्द बन गया और बहुत नाटे आदमी के लिए आने लगा। संस्कृत 'अव' मिलकर हिंदी में 'ओ' अथवा 'औ' हो जाते हैं जैसे लवण से नोन, लवंग से

लौंग, अवतार औतार, इत्यादि। कभी कभी बाद में 'अ' का आगम भी हो जाता है जैसे स्वर्ण से सोना। बस इसी प्रकार वावन से बौन बना और उसके बाद 'आ' का आगम हो गया और यह वावन से बौना बन गया और वावन अंगुल के अर्थात् बहुत नाटे मनुष्यों के लिए प्रयुक्त होने लगा।

(७ *पावरोटी*—१६ वीं शताब्दी में पुर्तगाली लोग गोवा, डामन, ड्यू आदि में अच्छी तरह बस गए। गोवा इनकी सब से बड़ी बस्ती थी। कुछ पुर्तगाली रोटी बेचा करते थे। रोटी को पुर्तगाली में 'पाव' कहते हैं और लो की मराठी है 'घे'। अतः ये 'घेपाव' 'घेपाउ' या 'गोपाउ' आवाज लगाकर रोटी बेचा करते थे। जिसका अर्थ होता था 'रोटी लो रोटी'। बाद में लोग नासमझी के कारण इन पुर्तगालियों को ही गोपाउ कहने लगे। गोवा में इसका यहाँ तक प्रचार हुआ कि प्रत्येक योरो-पियन को गोपाउ कहने लगे। जब गोपाउ आदमियों के लिये प्रयुक्त होने लगा, तो इसका रोटी से कोई संबंध न रह गया और लोगों ने पाव के अर्थ न समझ कर गलती से उसमें रोटी शब्द और जोड़ दिया, अन्यथा पाव तो स्वयं ही रोटी को कहते हैं, उसमें रोटी जोड़ने से क्या लाभ? धीरे धीरे यह शब्द चल पड़ा और इतना चालू हुआ कि आज सब कोई इस प्रकार की रोटी को पाव रोटी कहते हैं।

वास्तव में विदेशी शब्दों के अर्थ न मालूम होने के कारण प्रायः लोग अटकल-पच्चू उनके मानी लगा लिया करते हैं, जैसे लोग प्रायः कहा करते हैं गुल मेंहदी का फूल, गुल तसबीह का

फूल, गुल दोपहरिया का फूल, गुल बकावली का फूल, इत्यादि। उन बेचारों को यह नहीं मालूम कि'गुल' के मानी तो फारसी में फूल हैं ही, फिर 'फूल' लगाने की क्या आवश्यकता है? इसी प्रकार प्रायः लोग नासमझी के कारण गुल रोगन का तेल, मग्ज कद्दू के बीज कहते हैं, भला पूछो रोगन के मानी तो तेल और मग्ज मानी बीज स्वयं ही हैं। प्रायः लोग निखालिस घी या तेल मांगा करते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि निखालिस के मानी क्या हैं। खालिस के अर्थ हैं शुद्ध और 'नि' के मानी है नहीं, अतः जब खालिस में नि जुड़ गया तो उसके मानी हो गए 'अशुद्ध'। इस प्रकार वे शुद्ध के चक्कर में पड़ कर अशुद्ध वस्तु माँगा करते हैं।

(८) *लंक लाट* :—यह एक प्रकार का कपड़ा होता है जिसका थान लम्बा और फटने में मजबूत होता है। इसे लट्ठा भी कहते हैं। शायद लट्ठा तो इसलिए कहने लगे होंगे कि यह लट्ठ की भाँति मजबूत होता है अथवा पूरा लिपटा हुआ थान एक लट्ठे की भाँति प्रतीत होता है, परंतु लंकलाट के क्या अर्थ हैं। लंकलाट शब्द हिंदुस्तानी नहीं है। यह अंग्रेजी के लांग क्लाथ (Long cloth) शब्द का अपभ्रंश है। Long के अर्थ हैं लम्बा और cloth के कपड़ा। चूँकि इसका थान चालीस गज तक का होता है, अतः इसे Long cloth कहते हैं, परंतु अंग्रेजी न जानने वाले इसके मानी न समझ कर इसे बोलने का प्रयत्न करने लगे और सुख-सुख तथा सुविधा के लिए उन्होंने Long और cloth दोनों

शब्दों को मिला कर एक कर दिया और चूँकि हिंदी में ग और क दोनों एक वर्गीय शब्द हैं जिनको एक साथ बोलने में कठिनाई होती है, अतः 'ग' अर्थात् 'g' का लोप हो गया और उसे Lon cloth—लांक्लाथ या लंकलाथ कहने लगे। बाद में नासमझी के कारण लोगों ने इसको लंक और लाथ दो भागों में जोड़ लिया और लाथ के निरर्थक होने के कारण उसका अपना परिचित शब्द लाट बना लिया और इसे लंकलाट कहने लगे। इसी प्रकार और भी अनेकों शब्द भारतवर्ष में प्रचलित हैं जैसे अटेरियन, काग, केतली, ठेठर, तारकोल, पतलून, पैसा, फुलालैन, बारक, लाट, तारपीन, इत्यादि क्रमशः Italian, cork, kettle, theatre, coal tar, pantaloon, pice, flannel, barrack, lord, turpentine, इत्यादि के अशुद्ध रूप हैं।

(६) *सैंड विच* :—आज हम देखते हैं कि सैंडविच एक प्रकार का खाना है और हम उसे मेज पर बैठ कर छुरी काटे से काट कर खाते हैं, परंतु सैंड विच वास्तव में एक स्थान का नाम है। १८ वीं शताब्दी में (१७१८ से ६२ ई०तक) यहाँ एक नवाब रहते थे जिनको ताश खेलने का इतना शौक था कि खाने के लिए भी ताश पर से उठना पसंद न करते थे। अतः उन्होंने एक ऐसा खाना निकाला कि दाहिने हाथ से ताश खेलते रहें और साथ ही बाएँ हाथ से खाना भी खाते रहें। उन्होंने पाव रोटी के वकले किए और बीच में मांस, मुरब्बा, चटनी आदि लगा कर सामने रख कर ताश खेलने

खेलते खाते रहते थे। धीरे धीरे यह खाना सब मनुष्यों में फैल गया और बाहर भी लोग इसे अपनाने लगे। नवाब तो मर गये, परंतु यह खाना इनके नाम पर आज तक चला आता है और सैंड विच का चलन इतना बढ़ गया है कि अब हमारे भारतवर्ष में टिमाटर, आलू इत्यादि भर कर ही सैंड विच की नकल नहीं की जाती बल्कि तिरंगी बर्फी तक बनाई जाती है।

(१०) *बाय काट* (Boycott) :—अंग्रेजी में क्रिया की भाँति और हिंदी में तो संज्ञा की भाँति भी प्रयोग होता है, परंतु इसका इतिहास बड़ा मनोरंजक है। १९ वीं शताब्दी में Boycott आयरलैंड में एक आदमी था। १८८१ ई० में इसने कोई अपराध किया जिस पर इसके साथी और पड़ोसियों ने इसे छोड़ दिया और सब प्रकार के संबंध तथा सम्पर्क बंद कर दिए। इसमें बायकाट का नाम इतना फैल गया कि जहाँ किसी आदमी ने इस प्रकार का अपराध किया कि लोगों ने कहना आरंभ किया कि इसको Boycott बना दो। धीरे धीरे यह क्रिया के रूप में प्रयुक्त होने लगा और आजकल सब प्रकार के सम्पर्क अथवा संबंध छोड़ने के मानी में संज्ञा की भाँति भी प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी में भी Social boycott इत्यादि इसी प्रकार के प्रयोग के उदाहरण हैं।

(११) *लाइब्रेरी* :—जिसे गँवार लोग राय बरेली भी कहते हैं लै० लिबर (liber) से बना है। लैटिन भाषा में लिबर

पेड़ की छाल को कहते हैं। आप सोचते होंगे कि पेड़ की छाल और पुस्तकों से क्या संबंध। बात यह है कि कागज का आविष्कार होने के पूर्व पहले मनुष्य पेड़ की छाल पर ही लिखते थे। हमारे भारतवर्ष में भी भोज-पत्र पर लिखे हुए अनेकों ग्रंथ मिले हैं। अतः लिबर पुस्तकों से संबंधित हो गया और इससे लाइब्रेरी बन गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्दों का भी मनुष्यों की भाँति ही एक अपना अलग जीवन है और उनका भी मानव समाज की भाँति अपना एक इतिहास है जिसमें उनके जीवनवृत रहते हैं जिन्हें हम उनकी राम कहानी कह सकते हैं। राम कहानी तो छोटी या बड़ी प्रत्येक शब्द की है, परंतु आवश्यकता है खोज और सच्ची लगन की।

३
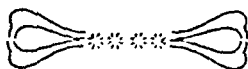
शब्द-निर्माण (भाषा की उत्पत्ति)

शब्द भाषा का चरम अवयव है। शब्दों की समष्टि से वाक्य बनते हैं और वाक्यों से भाषा। अतः शब्द-निर्माण की विवेचना करने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि भाषा क्या है और उसकी उत्पत्ति कैसे हुई, वह अर्जित संपत्ति है या प्राकृतिक।

भाषा बड़ा व्यापक शब्द है। यों तो जीव-जंतुओं और पशु-पक्षियों की बोली को भी भाषा कहते हैं, परंतु यह ठीक नहीं। माना कि भाषा परस्पर विचार-विनमय का एक साधन है, परंतु विचार-विनमय तो आकृति और इंगित अर्थात् इशारों द्वारा भी थोड़ा बहुत हो ही जाता है, केवल भूत-भविष्यत् की बात नहीं कही जा सकती और उतनी स्पष्टता नहीं आ सकती, तो क्या हम आकार-इंगित को भाषा कह सकते हैं? इशारों से काम तो गूंगा भी चला लेता है, तो क्या हम उसकी बोली को भाषा कह सकते हैं? वास्तव में कुछ लोग बोलने को ही भाषा मान लेते हैं, परंतु ऐसा नहीं है, अन्यथा

पालने में झूलने वाले अबोध शिशुओं की कूँ-कूँ, गूँ-गूँ भी भाषा कहलाती। बोलना एक क्रिया है और भाषा सार्थक व्यक्त ध्वनि-संकेत। वास्तव में ध्वनि-संकेतों का सार्थक होना, उनके व्यवहार में प्रयोजन होना आवश्यक है। हम कौवे की काँव-काँव, तोते की टें-टें, चिड़ियों की चूँ-चूँ, बंदरों की खों-खों, बकरी की में-में और बच्चों की गें-गें, गूँ-गूँ, रें-रें, पें-पें आदि को भाषा कदापि नहीं कह सकते। भाषा का पद केवल मनुष्यों की भाषा को ही प्राप्त है, पशु-पक्षियों की नहीं। भाषा मनुष्यों को ईश्वर की देन विशेष है।

अब प्रश्न यह है कि भाषा प्राकृतिक है अथवा अर्जित, मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है अथवा उसने अपने परिश्रम से उसका उपार्जन किया है। क्या सृष्टि के आदि में मनुष्य की कोई भाषा थी या भाषा की सृष्टि उसने अपने आप की। यदि मनुष्य भाषा के साथ उत्पन्न होता, तो समस्त संसार के मनुष्य एक ही भाषा बोलते, मनुष्य-समाज से पृथक रहने वाला जंगली मनुष्य भी प्राकृतिक भाषा सहज ही सीख जाता, विभिन्न वातावरण तथा समाज में परिपालित तथा परिपोषित होने पर बच्चे विदेशी भाषा न सीख सकते, परंतु ऐसा नहीं है। संसार में चीनी, जर्मन, सेमिटिक-हैमिटिक, अरबी-तुर्की आदि अनेक भाषाएँ हैं, केवल एक नहीं। दुर्घटना वश मानव-समाज से पृथक हो जाने के कारण जंगल में जानवरों के साथ रहने वाले बच्चे जानवरों की भाँति गें-गें, गूं-गूं, कीं-कीं करने के अतिरिक्त कोई भाषा नहीं बोलते।

डेनियल डि फो की 'राबिंसन क्रूसो' नामक जीवनी का 'फ्राइडे' और शैक्सपियर के 'टैम्पेस्ट' नामक ड्रामे का 'कैलीवन' प्रारंभ में जानवरों की भाँति कुछ अबोध्य ध्वनियाँ निर्गत करने के अतिरिक्त कोई भाषा नहीं बोलते थे। इसके अतिरिक्त अनेकों आदमियों ने बच्चों को मानव-समाज से पृथक रखकर उन पर प्रयोग भी किया है जिनमें मिश्र का राजा संमेटिकस, स्वाविया का सम्राट फ्रेडरिक, स्काटलैंड का राजा जेम्स चतुर्थ और मुगल सम्राट अकबर विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने नवजात शिशुओं का मानव-समाज से पृथक रख कर देखा, तो वे या तो गूंगे-वहिरे रहे या फिर जानवरों की भाँति बोलते थे जिसे किसी प्रकार भी भाषा नहीं कह सकते। यह तो हम दिन-रात ही देखते हैं कि यदि कोई भारतीय शिशु अंग्रेज धाय द्वारा पाला-पोषा जाय या पैदा होने के बाद ही वह किसी प्रकार इंगलैंड में रहने लगे, तो वह अंग्रेजी बोलना सीखेगा हिन्दी नहीं, यमुना पार रियासतों में रहने वाले मुसलमान बच्चे,सहज ही हिंदी सीख लेते हैं, पंजाब में पैदा होनेवाले हिंदू बच्चे उर्दू आसानी से सीख लेते हैं और अफ़गानिस्तान में पैदा होने पर पश्तो। अतः हम कह सकते हैं कि भाषा प्राकृतिक वस्तु नहीं अपितु अर्जित है। अब प्रश्न यह है कि इसका उत्पादन और अर्जन हुआ कैसे, यह बनी कैसे। यह जानने के लिए हमको उसके चरम अवयव शब्दों की उत्पत्ति तथा निर्माण का इतिहास ढूँढ़ना होगा, उनकी व्युत्पत्ति करनी होगी।

किया करते हैं और जिन जानवरों का नाम नहीं जानते उनको उनकी बोली के नाम से ही पुकारने लगते हैं जैसे वे बिल्ली की म्याउँ, कुत्ते की भों-भों, बंदर की खों-खों, बकरी की में-में, चिड़िया की चूँ-चूँ, कौवे की काँव-काँव, कोयल की कू-कू, बत्तख की केक-केक; पिल्ले की पी-पी, इत्यादि कह कर नकल करते हैं और उनको इन्हीं नामों से पुकारने लगते हैं। स्पष्ट है कि मनुष्य में अनुकरण की प्रवृति प्राकृतिक है। अनेकों शब्द इसी प्रकार बने हैं जैसे कुत्ते की भों-भों से भोंकना, भूखना, बकरी की में-में से मिमियाना, चिड़िया की चूँ-चूँ से चहचहाना, बंदर की खों-खों से खोखियाना कबूतर की गुटर-गूँ से गुटकना, इत्यादि। घोड़े का हिनहिनाना, ऊँट का बलबलाना, हाथी का चिंघाड़ना, कोयल का कूकना, बादल का गरजना या गड़गड़ाना बिजली का कड़कना, पर फड़फड़ाना, इत्यादि भी इसी प्रकार के अनुकरणात्मक शब्द हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भाषा का प्रारंभ अनुकरणात्मक शब्दों द्वारा हुआ, कुछ शब्दों की उत्पत्ति इस प्रकार नकल के आधार पर अवश्य हुई। यही कारण है कि प्रायः जानवरों और निर्जीव पदार्थों के वाचक शब्द उनकी स्वाभाविक ध्वनियों से मेल खाते हैं और विभिन्न भाषाओं में उसी अथवा समान रूप में पाये जाते हैं। जैसे 'म्याउँ' एक ही रूप में चीनी, मिश्री तथा कुछ भारतीय देशी भाषाओं में बिल्ली के लिए आता है, गाय के लिए संस्कृत में गो अंग्रेजी में काउ (cow) और ग्रीक में कुह (kuh) और कोयल के लिए संस्कृत में

भाषण शक्ति अर्थात् मुख से बोलना तो मनुष्य में आदि काल से ही थी, वह कुछ न कुछ ध्वनियाँ तो मुख से सहज ही निर्गत कर सकता था, परंतु प्रश्न यह है कि वे ध्वनियाँ सार्थक कैसे हुईं ? किसी ध्वनि का किसी अर्थ विशेष से संबंध कब और कैसे हुआ ? अर्थात् भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई ? इस विषय में अनेक मत हैं।

(१) *सांकेतिक उत्पत्तिः*—यह एक प्रकार से निश्चित सा हो चुका है कि आदि काल में मनुष्य की कोई भाषा नहीं थी, वह आकार-इंगित द्वारा ही अपने मनोभाव एक दूसरे पर प्रकट करता था। आदि काल में जब मनुष्य की आवश्यकताएँ कम थीं और पारस्परिक संपर्क इतना अधिक नहीं था, तो भले ही गूंगे-बहिरों की भाँति इशारों द्वारा कुछ थोड़ा-बहुत काम चल जाता हो, परंतु इससे भाषा की उत्पत्ति नहीं हो सकती, अधिक शब्दों का निर्माण नहीं हो सकता।

(२) *अनुकरणात्मक उत्पत्ति*—कुछ विद्वानों का मत है कि विभिन्न पशु-पक्षियों के स्वर की नकल करके मनुष्य ने भाषा की सृष्टि की। इस विषय में एक कितनी सुंदर और स्वाभाविक घटना कही जाती है। एक बार एक अंग्रेज चीन गया। एक दिन खाने में एक नई तरह का मांस दिखाई दिया। वह बेचारा चीनी बोली तो जानता न था। उसने बतख की बोली बोली 'क्वैक-क्वैक (quack-quack'। रसोइया भी अंग्रेजी नहीं जानता था, उसने उत्तर दिया 'बो-बो (bow-bow)'। बच्चे भी ऐसा ही करते हैं। ये शब्द पशु-पक्षियों की बोली की नकल

किया करते हैं और जिन जानवरों का नाम नहीं जानते उनको उनकी बोली के नाम से ही पुकारने लगते हैं जैसे वे बिल्ली की म्याउँ, कुत्ते की भों-भों, बंदर की खों-खों, बकरी की में-में, चिड़िया की चूँ-चूँ, कौवे की काँव-काँव, कोयल की कू-कू, बत्तख की केंक-केंक; पिल्ले की पी-पी, इत्यादि कह कर नकल करते हैं और उनको इन्हीं नामों से पुकारने लगते हैं। स्पष्ट है कि मनुष्य में अनुकरण की प्रवृत्ति प्राकृतिक है। अनेकों शब्द इसी प्रकार बने हैं जैसे कुत्ते की भों-भों से भोंकना, भूखना, बकरी की में-में से मिमियाना, चिड़िया की चूँ-चूँ से चहचहाना, बंदर की खों-खों से खोखियाना कबूतर की गुटर-गूँ से गुटकना, इत्यादि। घोड़े का हिनहिनाना, ऊँट का बलबलाना, हाथी का चिंघाड़ना, कोयल का कूकना, बादल का गरजना या गड़गड़ाना बिजली का कड़कना, पर फड़फड़ाना, इत्यादि भी इसी प्रकार के अनुकरणात्मक शब्द हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भाषा का प्रारंभ अनुकरणात्मक शब्दों द्वारा हुआ, कुछ शब्दों की उत्पत्ति इस प्रकार नकल के आधार पर अवश्य हुई। यही कारण है कि प्रायः जानवरों और निर्जीव पदार्थों के वाचक शब्द उनकी स्वाभाविक ध्वनियों से मेल खाते हैं और विभिन्न भाषाओं में उसी अथवा समान रूप में पाये जाते हैं। जैसे 'म्याउँ' एक ही रूप में चीनी, मिश्री तथा कुछ भारतीय देशी भाषाओं में बिल्ली के लिए आता है, गाय के लिए संस्कृत में गो अंग्रेजी में काउ (cow) और ग्रीक में कुह (kuh) और कोयल के लिए संस्कृत में

कोकिल अंग्रेजी में कुकू (cuckoo) और ग्रीक में कोक्किक्स (kokkyx) समान रूप में आते हैं। इसमें संदेह नहीं कि भाषा के आदि युग में कुछ शब्द इस प्रकार बने हों, परंतु यह भी सुनिश्चित है कि भाषा पूर्ण प्रासाद इस आधार पर कदापि नहीं बना, कारण कि उसमें मनोरागात्मक, प्रतीकात्मक औपचारिक आदि और भी अनेक प्रकार के शब्द पाए जाते हैं।

(३) *मनोरागात्मक उत्पत्ति*—हर्ष, भय, शोक, विस्मय, इत्यादि मनोरागों तथा छींकना, खाँसना, फुसकारना, डकारना, हुचकी लेना, फुंकारना आदि अनैच्छिक क्रियाओं के आवेग में आह-ऊह, ओह-हूंह, पें-पें, हों-हुच, इत्यादि कुछ स्वाभाविक ध्वनियां सहज ही मुख अथवा बाह्य इन्द्रियों से निकल पड़ती हैं। धीरे धीरे ये ध्वनियाँ उन्हीं मनोरागों तथा क्रियाओं की द्योतक हो गई और उनसे अन्य ध्वनि-संकेत भी निकले जैसे धिक् से धिक्कारना, धिक्कार. दुर-दुर से दुरदुराना, छिः छिः से छीछी, छिया. छींह से छींकना, छींक, खूँह-खूँह खांसने की आवाज से खांसना, खखारना, खाँसी, फ़ा. तथा अं० cough; डकारने की आवाज डों-डों से डकारना. हिचकी की आवाज

'ओह (oh)', जर्मन 'ओ', फ्रांसीसी 'अहि' आदि कह कर रह जायगा। हर्ष के समय भारतवासी 'अहा अहा' कहेगा, तो अंग्रेज हुर्रा (hurrah) हुर्रा करेगा, धिक्कारने के लिए भारतवासी धिक् धिक् करेगा, तो अंग्रेज फिह-फिह (fie-fie) कहेगा।

यह सुनिश्चित सा है कि इस प्रकार भी कुछ शब्द अवश्य बने, परंतु मनोराग संबंधी विस्मयादि बोधक अव्यय तो भाषा के अंतर्गत लिए नहीं जा सकते। हाँ अनैच्छिक क्रियाओं से संबन्ध रखने वाले शब्द भाषा का अंग है, परंतु ये हैं ही कितने, अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। अतः उक्त मत द्वारा भी भाषा-प्रासाद की आंशिक व्याख्या ही हो सकती है।

(४) *प्रतीकात्मक उत्पत्ति*—बहुत से शब्द उपचार द्वारा भी बनते हैं। प्रायः लोग ज्ञात द्वारा अज्ञात की व्याख्या सादृश्य नियम के आधार पर किया करते हैं। बच्चे प्रायः इस प्रकार अनेकों शब्द बनाया करते हैं जैसे बच्चों ने केंचुआ तो देखा है, बस वे उसी के नाम पर साँप को भी केंचुआ कहते हैं; मेरा एक छोटा बच्चा लिंगेंद्रिय को भी बम्बा कहा करता है, कारण कि जिस प्रकार बम्बे से पानी निकलता है, उसी प्रकार लिंगेंद्रिय से मूत्र निकलता हैं; गाँव वाले हवाई जहाज को चील गाड़ी कहा करते थे, कारण कि जहाज आकाश में चील की तरह उड़ता है। गुल मेंहदी में मेंहदी के सादृश्य पर ही

नाम पड़ा है। ज्योतिष, रेखागणित, गणित, विज्ञान आदि में सभी परिभाषिक शब्द उपचार द्वारा ही बने हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उक्त मतों में से कोई एक मत भी इतना पूर्ण नहीं है कि उससे समस्त भाषा-भांडार की व्याख्या हो सके। हाँ इतना अवश्य है कि भाषा के आदि काल में शब्दों की उत्पत्ति उक्त सभी प्रकार से हुई है। यह भी स्वीकार करना होगा कि भाषा के आदि युग में मनुष्य का शब्द-भांडार भी इतना समृद्धिशाली नहीं था। उस समय मनुष्यों की आवश्यकताएँ कम थीं, उनका ज्ञान सीमित था, उनके नैतिक जीवन में समस्याएँ थोड़ी थीं, अतः एक दूसरे पर अपने मनोभाव प्रकट करने के लिए थोड़े से शब्द ही यथेष्ट थे। ज्यों ज्यों मनुष्य की सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक जीवन संबंधी समस्याओं में जटिलता बढ़ने लगी, त्यों त्यों शब्द-भांडार भी बढ़ता गया और नित्य प्रति बढ़ता ही जा रहा है, सभ्यता के विकास के साथ भाषा की भी उन्नति हुई और बराबर होती जा रही है।

अतिरिक्त भाषा - भाषियों के परस्पर मिलन से, संयोग-सूत्र दृढ़ होने से, सभ्यता और शब्दावली का लेन-देन होने से, अपने आयोजन के अनुसार एक भाषा दूसरी भाषा के शब्द सहज ही ग्रहण कर लेती है। इसमें कोई हानि भी नहीं, अपितु वास्तव में देखा जाय, तो जिस भाषा में जितनी ही दूसरी भाषा के शब्द पचाने की शक्ति होगी, वह उतनी ही दिन - दिन समृद्ध, उन्नत और पुष्ट होती जायगी। हाँ इतना अवश्य है कि विदेशी तथा विजातीय शब्दों को मिलाने के पूर्व उनकी शुद्धि कर लेनी चाहिए, उनको अपनाने के लिए उनका विदेशीपन दूर कर लेना चाहिए, उनको अपना बाना पहिना लेना चाहिए। उदाहरणार्थ बिंदु उड़ा कर क़लम को कलम, चाक़ू को चाकू कर लेना, हुक्म को हुकम, क़ब्र को कबर कर लेना, अमेरिका को अमरीका, इटैली को इटली, केटिल (kettle) को केतली, टिन (tin) की टीन, टोमेटो (tomato) को टिमाटर, थ्येटर (theatre) को ठेठर, डजेन (dozen) को दर्जन, इत्यादि बना लेना चाहिए। उक्त प्रकार भाषा-सम्मिश्रण तथा शब्द ग्राहकता का अंग्रेजी भाषा एक उत्तम उदाहरण है। इधर पिछले दिनों में हमारी हिंदी भाषा में भी यह शक्ति बराबर विकसित होती रही है। फल स्वरूप हिंदी में भी अरबी - फारसी - तुर्की, अंग्रेजी - लैटिन पुर्तगाली, तामिल-द्राविड़-बंगला आदि भाषाओं के अनेकानेक शब्द आ गए हैं। उदाहरणार्थ आबरू, आतिशबाज़ी, अफ़सोस, आराम, आमदनी, आवाज, इमला, कद्दू,

कबूतर, करमकल्ला, कुश्ती, कुरता, किशमिश, किनारा, कूचा, खाका, खरगोश, खुश, खुराक, खून, गज, गोला, गवाह, गिर्मी, गिरफ्तार, गरम, गिरह, गुलाब, चाबुक, चालाक, चश्मा. चिराग, चर्खा, चूँकि, चौकीदार, चाशनी, जहर, जीन, जच्चा, जादू, जान, जुरमाना, तरकश, तमाचा, तालाब, तेज, तीर, ताक, दीवार (दीवाल), दामाद, दरबार, दंगल, दिलासा, दिमाग, दुम, दिल, दवा, दोस्त, धलीज, (देहलीज) नशा, नख, नाप (नाफ), नापाक, पाजी, पासंग, पैजामा, पाक, पाया, पर्दा, परहेज, पुर्जा, परवाह, पलंग, पलीत, पैदावार, पलक, पुल, पैमाना, बेहूदा, बीमार, बुरादा, बिरादरी, मादा, माशा, मलाई, मस्त, मुर्दा, मजा, मलीदा, मुफ्त, मुर्गा, याद, राय, रंग, वापिस, शराब, शादी, शोर, शीरा, सितार, सरदार, सरकार, सूद, सीना, हफ्ता, हजार, इत्यादि, फारसी भाषा से अजब, अमीर, अत्तार, अकल, असर, अल्ला, आखिर, आदमी, आदत, इनाम, इस्तीफा, इमारत, इलाज, एहसान, औरत, कदम, कबर, कसर, किस्सा, किला, कसम, कीमत, कसरत, कुर्सी, किताब, कायदा, खबर, खतम, खत, खराब, गरीब, जलूस, जलसा, जिन, जनाब, जवाब, जहाज, ताज, तखत, तगादा, तारीख, तकिया, तमाशा, तूती, तोता, तैरना, तहसील, दावत, दफ्तर, दवा, दुकान, दलाल, दुनिया, नतीजा, नाल, नकद, नकल, नहर, फकीर, फैसला, बहस, बस्ती, बग्गी, मुहावरा, मेहनत, मदद, मुद्दई, माल, मिसाल, मुंसिफ, मालूम,

मुकद्दमा, मल्लाह, मवाद, मौसम, मौलवी, मतलब, माने, मेदा, लिहाफ, लिफाफा, लेकिन, वकील, हैजा, हिसाब, हरामी, हद, हुकम, हाजिर, हाल, हाशिया, हमला, हाकिम, इत्यादि अरबी से, उर्दू, कालीन, कमची, कैंची, कुली, कुर्की खजांची, चिक, चेचक, चमचा, चम्मच, चाकू, चारपाई, जाजिम, तोप, तमगा, तोशक, तलाश, दरोगा, नौसादर, बुलबुल, बेगम, बहादुर, बीबी, लाश, सौगात, इत्यादि तुर्की से, अपील, अफसर, अस्पताल, आपरेशन, इंच, कंपनी, कमीशन, कलक्टर, कटपीस, कमेटी, कफ, कापी, कांग्रेस, कालर, काग (cork), कालिज, क्लब, कोट, गजट, गिलास, गार्ड, गिन्नी, गैस, गेटिस, चाक, चैक, चेन, चेस्टर, जज, जेलर, टिकट, टीम, ट्रंक, टुइल, टेनिस, डाक्टर, ड्रामा, डायरी, डिप्टी, ड्रिल, थर्मामीटर, निब, नेकर, नोट, नोटिस, पंचर, पम्प, पतलून, पालिश, पार्सल, पेंसिल, पिन, पुलिस, पैसा, पाई, प्रेस, फार्म, फिट, फेल-पास, फोटो, फोटोग्राफ, बंक, बटन, बकस, बनयान, बारक, बिल, बजट, ब्रेक, मफलर, मैनेजर, मिनट, मिल, मैच, रबड़, रसीद, रपट, रन, रजिस्टर, लंप, लैसंस, सम्मन, सरज, स्लेट, सरकस, स्कूल, स्काउट, स्टेशन, हाकी, हिट, होटल, इत्यादि अंग्रेजी से, आलमारी, इस्त्री, कमीज, कनिस्तर, कमरा, काजू, गमला, गिर्जा, गोदाम, गोभी, चर्खा, तौलिया, नीलाम, परात, पिस्तौल, पंपा, फीता, बोतल, सागौन, इत्यादि पुर्तगाली से, कूपन, कारतूस, इत्यादि फ्रांसीसी से, तुरुप, बम (गाड़ी की) इत्यादि डच भाषा से, पिल्ला,

चुरुट, कोड़ी, इत्यादि द्राविड़ भाषाओं से, चुंगी तिब्बती से, चाय, मैना, इत्यादि चीनी से हिंदी में आए हैं और ऐसे घुल-मिल गए हैं कि इनके बिना काम चलना कठिन है और इनका अलग करना असंभव सा है। इनके लिए हमारी भाषा हिंदी में शब्द ही नहीं थे और होते भी कैसे, ये चीजें ही सब विदेशी हैं, हमारे भारतवर्ष में थी ही नहीं। सच बात तो यह है कि शब्द - ग्राहकता ही भाषा का जीवन है, जिस भाषा में यह शक्ति जितनी ही अधिक होगी वह उतनी ही परिपूर्ण तथा समृद्ध होगी और अधिक दिन तक जीवित रहेगी, परंतु इधर जब से हिंदी राष्ट्र भाषा हुई है कुछ लोग उक्त प्रकार के उन विदेशी शब्दों को भी व्यवहार में लाना नहीं चाहते जो कि हमारी भाषा हिंदी के अंग बन चुके हैं। वे लोग इनके स्थान में भी संस्कृत के क्लिष्ट शब्द अनावश्यक रूप से ठूँस-ठाँस करने का प्रयत्न करते हैं। एक दो उदाहरणों से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। एक दिन मैंने दफ्तर के दरवाजे पर लिखा हुआ देखा 'प्रवेश वर्जित'। यह अंग्रेजी 'no admision' का अनुवाद है और 'भीतर आना मना है' के स्थान में प्रयोग किया गया है। 'प्रवेश वर्जित' एक ऐसा वाक्य खंड है जिसे थोड़े-बहुत पढ़े-लिखे की तो कौन कहे अच्छा खासा पढ़ा-लिखा सुशिक्षित आदमी भी यकायक नहीं समझेगा। transfer के लिए स्थान-परिवर्तन कहना कहाँ तक उचित है, 'बदली' ही क्या बुरा था। इसी प्रकार और भी अनेकों शब्द ऐसे हैं जिनको हटा

कर संस्कृत के कठिन शब्दों को अनावश्यक रूप से स्थान दिया जाता है। इससे भाषा में क्लिष्टता आ जाती है, उसकी पाचन शक्ति क्षीण हो जाती है और जीवन शक्ति कम हो जाती है। हाँ पारिभाषिक शब्द जो हमारी भाषा में अभी तक है ही नहीं और जिनके स्थान में कोई विदेशी शब्द भी चालू नहीं है, संस्कृत से ले लेने अथवा कोई नया शब्द गढ़ लेने में कोई हानि नहीं, परंतु चालू शब्द को हटाना युक्तिसंगत नहीं।

इतना ही नहीं कि एक भाषा का शब्द दूसरी भाषा में पाया जाय, वल्कि विभिन्न कालों तथा परिस्थितियों में उसका अर्थ तथा रूप भी अदलता-बदलता रहता है। एक एक शब्द के भीतर अनेकों रहस्य तथा ऐतिहासिक तथ्य छिपे रहते हैं। अनेक स्थलों पर ऐसे ऐसे शब्द पाए जाते हैं जिनमें एक एक जाति के उत्थान-पतन का पूरा पूरा इतिहास छिपा रहता है। यहाँ पर मैं उदाहरण के लिए कुछ ऐसे ही शब्दों को लूँगा।

(१) *सुपारी*—इसमें भारतवर्ष के दूसरे देशों के साथ व्यापार का इतिहास दिया है, यह प्राचीन काल में भारत के बहिर्वाणिज्य की उन्नति बताता है। सुपारी को संस्कृत में गुवाक या पुंगीफल कहते हैं। यह पश्चिमी तट पर अधिक होती है। गुप्त काल में भारत का अरब-फारस आदि पश्चिमी देशों से बराबर व्यापार होता था। पुंगीफल का लदान सूर्पारक या सोपारा बंदरगाह से होता था, अतः अरब-फारस आदि देशों में पुंगीफल को 'सोपरा' अर्थात् सोपारा से आने

वाला फल कहने लगे। बाद में ७ वीं शताब्दी के बाद अरबियों के भारत में आने पर और मुसलिम राज्य होने पर पुंगीफल को सोपरा भी कहने लगे। धीरे धीरे यह इतना प्रचलित हो गया कि पुंगीफल केवल पूजापाठ में पंडितों की जिह्वा पर ही रह गया और शेष हिंदू-मुसलिम सब भारत वासी इसे सोपरा कहने लगे। सुपारी सोपरा से ही बिगड़कर बना है।

(२) *भभूत*—के अर्थ है भस्म या राख जो साधु लोग अपने बदन पर लगाए रहते हैं या राख की वह पुटकी जो वे भक्त लोगों को अपने सामने जली हुई धूनी या लकड़ी से उठा कर दे देते हैं। 'भभूत' का शुद्ध रूप है विभूति जिसमें 'वि' विशेषण प्रत्यय है और 'भूति' संज्ञा। वि माने विशेष और भूति माने सम्पत्ति अर्थात् विशिष्ट या विशेष सम्पत्ति। अब प्रश्न यह है कि सम्पत्ति विशेष भस्म कैसे हो गई, विशिष्ट सम्पत्ति से गिरकर इसके अर्थ केवल भस्म कैसे रह गए। यदि इतिहास के पन्ने पलट कर देखा जाय तो पता चलेगा कि साधुओं का जैसा मान आज है वैसा प्राचीन काल में न था, पहिले उनकी बड़ी मानता होती थी, बुद्ध भगवान एक भिक्षु या साधु ही थे, महर्षि विश्वामित्र गुरु वशिष्ट आदि रामायण काल में साधु-सन्यासी ही थे। वास्तव में वर्ण आश्रम काल में सन्यासी होना प्रत्येक ग्रहस्थ के लिए आवश्यक सा था और बड़े बड़े राजे-महाराजे तक वृद्धावस्था में राज-पाट घर-द्वार छोड़ कर सन्यासी हो जाते थे। धीरे-धीरे तप-तपस्या का इतना जोर बढ़ा,

सन्यास आश्रम इतना प्रबल हो गया कि धन-धाम, रत्न-राशि की अपेक्षा भस्म लपेटने को ही लोग राज से बड़ी सम्पत्ति समझने लगे। धीरे धीरे भस्म को ही विभूति कहने लगे। आजकल विभूति तो अपने असली अर्थ भी कभी कभी देता है, परंतु इससे निकला हुआ भभूत केवल भस्म के ही माने देता है।

(२) मुद्रा—आजकल इसका चलन उठ सा गया है और कोई कोई तो इसके अर्थ रुपया समझते हैं जो कि अशुद्ध है। इसके अर्थ हैं 'साल मोहर की छाप'। प्राचीन हिंदू काल में इसका चलन अधिक था। चंद्रगुप्त मौर्य के समय के 'मुद्रा-राक्षस' नामक नाटक से इसकी पुष्टि होती है, राक्षस मंत्री का नाम था और मुद्रा का अर्थ है सील मोहर जिसका उसमें विशेष महत्व है। अब प्रश्न यह है कि यह शब्द यहाँ आया कैसे, भारतवर्ष में मुद्रांकन का चलन हुआ कैसे। खोज करने पर पता चलता है कि मुद्रा शब्द फारसी भाषा का है और प्राचीन फारसी भाषा में 'मुद्राय' मिश्र देश का नाम था। मुद्राय से जो लिया गया हो वह हुआ 'मुद्रा' अर्थात् जो मुद्राय देश के लोगों से सीखा गया हो। स्पष्ट है कि मोहर लगाना हमारे पूर्वजों ने मिश्र देश वालों से सीखा। इस प्रकार एक मुद्रा शब्द ने यह बता दिया कि प्राचीन काल में भारत का फारस और मिश्र से घनिष्ट संबंध था, लेन-देन, आना-जाना और पारस्परिक व्यवहार तथा व्यापार होता था।

उक्त उदाहरणों से आप समझ गए होंगे कि शब्दों की उत्पत्ति कैसे होती है और कैसे एक छोटे से शब्द के भीतर गूढ़ रहस्य और बड़े बड़े इतिहास भरे रहते हैं।

४

शब्द सीखना

(भाषा का अर्जन)

भाषा का चरम अवयव है शब्द। अतः शब्द सीखने के माने हैं भाषा का अर्जन करना। यह बताने के पूर्व कि भाषा का अर्जन किस प्रकार होता है, शब्द किस प्रकार सीखे जाते हैं अथवा मनुष्य में भाषा का विकास किस प्रकार होता है, यह बताना आवश्यक है कि भाषा है क्या। 'भाषा' शब्द के कई अर्थ हैं—किसी देश विशेष की भाषा, उदाहरणार्थ चीनी, फारसी, अँग्रेजी, आदि, किसी प्रांत विशेष की भाषा, उदाहरणार्थ बिहारी, बँगला, अवधी, ब्रज, राजस्थानी, मराठी, गुजराती, आदि, किसी स्थान-विशेष की भाषा, उदाहरणार्थ नागरिक, ग्रामीण भाषाएँ आदि, किसी सम्प्रदाय विशेष की भाषा, जैसे कथक्कड़ी, सधुक्कड़ी, पण्डिताऊ, साहित्यिक, आदि, किसी जाति विशेष की भाषा जैसे गूजरों की भाषा, जाटों की भाषा, कायस्थों की मुंशियाना जुबान, आदि, किसी व्यवसाय-विशेष की भाषा, उदाहरणार्थ सुनारों, सर्राफों तथा अन्य दुकानदारों की भाषाएँ, गुप्त अथवा सांकेतिक भाषाएँ,

यथा ठगों, चोरों, स्काउटों आदि की भाषाएँ, सी० आई० डी० की भाषा, सांकेतिक भाषा, तार की भाषा आदि, भाषा का कोई रूप-विशेष, जैसे साहित्यिक भाषा, सर्व-साधारण की भाषा, परिमार्जित भाषा, गढ़ी हुई भाषा आदि, किसी विषय-विशेष की भाषा, यथा रेखागणित की भाषा, इत्यादि यहाँ भाषा से हमारा आशय उसके साधारण अर्थ अर्थात् मनुष्य मात्र की भाषा से है। मनुष्य एक समाजबद्ध प्राणी है, वह सदा अपने मन की बात दूसरों पर प्रकट करने और दूसरों के मन की बात जानने की चेष्टा करता है। वह साधन जिसके द्वारा मनुष्य किसी वस्तु के विषय में मुख से परस्पर बात-चीत अथवा भाव-प्रकाशन करते हैं, भाषा कहलाता है। जब हमारा किसी बाह्य वस्तु से सम्पर्क होता है, तो एक लहर-सी उत्पन्न होती है जो कि त्वचा, चक्षु, कर्ण, जिह्वा, नासिका आदि बाह्य इंद्रियों के द्वारा मस्तिष्क में पहुँचती है और हमें एक नवीन प्रकार का अनुभव होता है जिसे हम ध्वनि-संकेतों अथवा शब्दों-द्वारा मुख से प्रकट करना चाहते हैं। ये ध्वनि-संकेत या शब्द ही भाषा और इनके उच्चारण की क्रिया भाषण है; परंतु भाषा का पद ग्रहण करने के लिए इनका यों ही पशु-पक्षियों की भाँति बोल लेना भर ही पर्याप्त नहीं है, अपितु जैसा कि बताया जा चुका है इनका सार्थक तथा सप्रयोजन होना भी नितांत आवश्यक है। भाषा प्राकृतिक अपितु मनुष्य की स्वयं अपने प्रयत्न-द्वारा अर्जन की हुई वस्तु है। हम किसी भी देश या जाति की भाषा अपने पूर्वजों के अनुकरण मात्र से ही सीख सकते हैं। संक्षेप में

भाषा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) भाषा विचारों और मनोभावों का बाह्य स्वरूप है। यदि विचार आत्मा है, तो भाषा शरीर है।

(२) भाषा किसी-न-किसी वस्तु के विषय में—चाहे वह भौतिक हो अथवा मानसिक—विचार प्रकट करती है।

(३) भाषा अर्जित सम्पत्ति है, प्राकृतिक नहीं और वह अनुकरण द्वारा अर्जित की जाती है। अतः उसके लिए समाज का होना नितांत आवश्यक है।

(४) मनुष्य भाषा को सदा परस्पर विचार-विनमय अर्थात् बातचीत करने में काम में लाता है। अतः भाषा का सप्रयोजन होना आवश्यक है।

भाषण प्राकृतिक और भाषा से अधिक प्राचीन होने के अतिरिक्त भाषा की जड़ है, अतः भाषा की उत्पत्ति तथा विकास जानने के पूर्व भाषण की उत्पत्ति जान लेना भी आवश्यक है। भाषण की प्रथम अवस्था, अर्थात् रोना,किल्ली मारना, प्रलापना कूँ-कूँ गूँ-गूँ करना और किलकारी भरना तो प्रत्येक मनुष्य में जन्म से ही पाई जाती हैं। अब प्रश्न यह है कि उनका विकास किस प्रकार हुआ और उसे भाषण का रूप तथा पद कब और कैसे मिला। यद्यपि इसका ठीक-ठीक पता लगाना कठिन है, तो भी बच्चों की भाषा तथा भाषण से बहुत कुछ जानकारी मिलती है। जीव-विज्ञान के पण्डितों का मत है कि मानव जाति का विकास ठीक मनुष्य के विकास की भाँति ही हुआ है। जिस प्रकार एक अबोध अज्ञान शिशु यों ही स्वयं अपने मनोरंजन

के लिए कुछ सहज तथा स्वाभाविक ध्वनियाँ निर्गत करता है और भूख-प्यास लगने और दुख-दर्द होने पर रोता-चीखता है, इसी प्रकार प्रारंभ में आदिम मानव जाति भी कुछ सहज और स्वाभाविक ध्वनियाँ निर्गत करती रही होगी।

जब बच्चा तीन-चार मास का हो जाता है, तो वह मस्त होकर कूँ-कूँ-गूँ-गूँ आदि करने और किलकारियाँ भरने लगता है। इसी प्रकार आदिम मानव जाति भी यों ही स्वयं अपने मनोरंजन के लिए गुनगुनाया करती रही होगी। मनुष्य समाज-बद्ध प्राणी है, वह एक बड़ा भारी समाजी है, वह सदा साथी बनाना और परस्पर बातचीत करना चाहता है, अतः केवल यों ही निकलनेवाली सहज और स्वाभाविक ध्वनियों से ही काम नहीं चल सकता।

जब बच्चा पाँच छः महीने का हो जाता है, तो रङ्गीन खिलौने या चमकती हुई वस्तुएँ देखकर उनकी ओर लपकने लगता है। इसी प्रकार प्रारंभ में मानव जाति भी इंगितों-द्वारा अपना काम चलाती होगी।

जब बच्चा आठ-नौ मास का हो जाता है, तो वह बा बा, मा-मा आदि ओष्ठ्य ध्वनियाँ निर्गत करने लगता है, परन्तु माँ-बाप उनको अपने लिए समझकर उत्तर दे देते हैं और बच्चे से बोलने लगते हैं। धीरे-धीरे बच्चा भी इन ध्वनियों को माँ-बाप के लिए प्रयोग करने लगता है। इस प्रकार सहज और स्वाभाविक ध्वनियों का अकस्मात् ही विभिन्न वस्तुओं तथा प्राणियों से सम्बंध हो जाता है अर्थात् वे अर्थ से संबंधित

होकर सार्थक ध्वनि-संकेत बन जाती हैं। इसी प्रकार 'पा-पा' का पिता अथवा पानी से, 'हप्पा' का खाने-पीने की वस्तु से, 'चा-चा' का चचा से, 'बुआ' का किसी स्त्री से संबंध हो जाता है। भाषा और भाषण का श्रीगणेश यहीं से होता है। चाचा, बुआ, बाबा, माला, पापा आदि ध्वनिसंकेत ही भाषा और इनका व्यवहार करना अर्थात् बोलना ही भाषण है। इस प्रकार बच्चों की भाषा का प्रारंभ समाज और अकस्मात् संबंध-द्वारा होता है। मानव-समाज ने भी अधिक सम्बंध में आनेवाले मनुष्यों, पशु-पक्षियों और वस्तुओं को सहज ध्वनियों से अकस्मात् ही संबंधित कर लिया होगा।

जब बच्चा डेढ़-दो वर्ष का हो जाता है, तो वह म्याउँ, कू-कू, भौं-भौं, चूँ-चूँ, खों-खों, का-का (काग या काक), घुग्घू आदि अनुकरणमूलक अर्थात् नकल से बननेवाले शब्द और अहा, हा-हा, ओहो आदि विस्मयादिबोधक अर्थात् दुःख, शोक प्रसन्नता आदि प्रकट करनेवाले शब्द तो सहज ही बना लेता है और कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, बंदर, भाई या भय्या, बीबी, आदि शब्दों को समाज द्वारा जान लेता है। इस प्रकार बच्चों को पुराने और पहले से बने-बनाए संसर्गों को अर्थात् विकसित भाषा को सीखना पड़ता है और उनको सिखानेवाले मनुष्य भी पहले से ही उपस्थित रहते हैं; परंतु आदिम मानवजाति को इतनी सुविधा न थी। उसके सम्मुख न तो संसर्ग ही थे और न उनके सिखानेवाले मनुष्य ही। अब प्रश्न यह है कि उन्होंने सार्थक शब्दों की उत्पत्ति कैसे की और उनका वर्तमान अर्थों से संबंध

कैसे हुआ ? संभव है, कुछ अनुकरणमूलक और विस्मयादि-बोधक शब्द योंही बन गए हों, परंतु शेष शब्द-भंडार किस प्रकार निर्मित हुआ, यह बताना कठिन है। इस विषय में विद्वानों के कई एक मत हैं।

जब बच्चा लगभग दो वर्ष का हो जाता है, तो वह कुत्ते, बिल्ली, बंदर, माँ-बाप आदि को देखकर तुत्ता, बल्ली, बन्नर अम्मा, बाबू आदि कहने लगता है; परंतु इसके यह माने नहीं हैं कि वह पहले शब्द सीखता है। वह सोचता तो वाक्यों अथवा विचारों में ही है, परंतु प्रकट करने अर्थात् बोलने की शक्ति निर्बल होने के कारण वह अपने विचारों को वाक्यों में प्रकट नहीं कर पाता है, यद्यपि उसका आशय यही होता है कि देखो बिल्ली आई, अम्मा आओ, बाबू आए, आदि। इसी प्रकार 'मामी' से 'पानी लाओ', 'दूद' से 'दूध लाओ', 'दोदी' से 'गोदी ले लो', 'पैसिया' से 'पैसा दे दो', 'बज्जी' से 'बाजार चलो', 'घर' से 'घर चलो' आदि होता है। इस प्रकार बच्चा भाषा में प्रयोग चाहे शब्दों का करे, परंतु वे होते वाक्यों के लिए ही हैं अर्थात् वह उनका भाषण वाक्यों के लिए ही करता है। अतः भाषा का चरम अवयव शब्द भले ही हों परंतु भाषण का चरम अवयव वाक्य ही हैं। इसी प्रकार संभवतः आदिम मानव जाति भी प्रारंभ में शब्दों को ही काम में लाती रही होगी।

जब बच्चा दो-तीन वर्ष का हो जाता है, तो वह दो-दो, तीन-तीन शब्दों को एक साथ बोलने लगता है जैसे 'अम्मा,

कमीज, बाजार' अर्थात् अम्मा, कमीज पहना दो, बाजार जाऊँगा; 'बाबू, पैसा, चीज' अर्थात् बाबू पैसा दे दो, चीज लूँगा; 'बाबू साम तत्ती' अर्थात् बाबू, श्याम तख्ती छूता है इत्यादि। इसके अतिरिक्त वह अधूरे वाक्य भी बोलने लगता है, जैसे 'बाबू, पाल मारा' अर्थात् बाबू गोपाल ने मुझे मारा है, 'पूरी खा' अर्थात् मैं पूरी खाऊँगा, 'ताऊ बीबी लो' अर्थात् ताऊ, बीबी रो रही है, 'बाबू, मन लगल' अर्थात् बाबू, लक्ष्मण लँगड़ छीनता है, 'बाबी, जाज' अर्थात् भाभी जहाज आया, 'बीबी, जू जू' अर्थात् भाभी जू जू आया, इत्यादि और 'दूध गिरो' 'बिल्ली गई', 'कुत्ता गई', 'चाचा गई', 'एबुद' (अर्थात् महमूद) गई 'बिल्ली बच्चा गई', 'बाबू आ गए', 'कन (अर्थात् किशन) आ गए', कन कापू (चाहे कापी हो या किताब) लाई, घोड़ा (घोड़ा हो चाहे गधा) आ, भाबी गोदी आओ (ले लो), इत्यादि। सारांश यह है कि उसे अभी काल, लिंग, वचन, कारक, कारक-चिह्न, क्रिया-भेद आदि का ज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार आदिकालीन मनुष्य भी वाक्य के अवयव अर्थात् शब्द पृथक्-पृथक् प्रयोग करने लगे होंगे। पहिले मूर्त वस्तुओं और सम्पर्क में आने वाले प्राणियों के नाम बने होंगे, तत्पश्चात् धीरे-धीरे जातिवाचक व भाववाचक शब्दों का निर्माण भी हो गया होगा।

इस अवस्था में एक प्रवृत्ति और भी पाई जाती है। कभी-कभी बच्चा शब्दों की उच्चारण-सम्बंधी कठिनाई के निवारणार्थ उनको लयकाकर भी कहता है, जैसे गदहा (अर्थात्

गधा), डंडआ (अर्थात् डंडा), वनरुआ (अर्थात् वंदर), देदय (अर्थात् दे दे), हअये (अर्थात् है), इत्यादि। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो वह मस्त होकर 'चाचा आ गए', चाचा आ गए, 'झंडा ऊचा, झंडा ऊँचा', 'राधे विंद' (अर्थात् राधे-गोविंद)', 'जै विंदे पाल' (अर्थात् जय गोविंद जय गोपाल) आदि लय से गाया करता है। उसकी भाषा में स्वर और लय की अधिकता होती है और उसका भाषण बड़ा प्यारा लगता है, परंतु ज्यों-ज्यों वह वड़ा होता जाता है और पूरे-पूरे वाक्य वोलने लगता है, त्यों-त्यों उसकी भाषा में स्वर और लय की कमी होती जाती है। यहाँ तक कि जव वह तीन-चार वर्ष का हो जाता है, तो वह तनिक भी लयका कर नहीं वोलता और उसकी भाषा में व्यञ्जनों का आधिक्य और स्वरों की न्यूनता हो जाती है। वोलने की शक्ति निर्वल होने के कारण वह कभी-कभी हिचकिचा भी जाता है और पूरी वात नहीं कह पाता, परंतु पाँच वर्ष की अवस्था तक यह वात भी जाती रहती है। आदिम मानव-जाति में भी भाषा और भाषण का विकास इसी प्रकार हुआ होगा। भाषाओं का इतिहास और जंगली भाषाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि आदिकालीन भाषाएँ सुर-प्रधान थीं अर्थात् उनमें लय-सुर की अधिकता थी।

जव वच्चा पाँच साल का हो जाता है और स्कूल में जाकर सभ्यता के चक्कर में पड़ जाता है तो उसकी भाषा की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। वह पूर्ण तथा गठे हुए वाक्य

बोलने लगता है और लयकाने की प्रकृति तो पूर्णतः नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार आदिम काल में भी जब भाषा में शब्दों की कमी न रही होगी और परस्पर बात-चीत सुविधा-पूर्वक होने लगी होगी, तो व्याकरणाचार्यों ने उसके नियम बना दिये होंगे और इस पद्य-भाषा से गद्य-भाषा भी उत्पन्न हो गई होगी।

जिस प्रकार बालक दस-पाँच वर्ष स्कूल में शिक्षा-ध्ययन करने के पश्चात् साहित्यिक भाषा समझने लगता है और अपढ़ मनुष्यों से अच्छी भाषा बोलने लगता है, उसी प्रकार भाषा भी नियम बनने और व्याकरण में बँधने पर साहित्यिक हो जाती है और उसे शिक्षित मनुष्य प्रयोग में लाने लगते हैं, परंतु सर्वसाधारण अशिक्षित मनुष्य उन नियमों और व्याकरण के बंधनों की उपेक्षा करके अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाते हैं। इस प्रकार भाषा के दो रूप हो जाते हैं, एक साहित्यिक भाषा और दूसरा सर्वसाधारण की भाषा। इन दोनों रूपों में सदा ऐंचातानी होती रहती है और अपने-अपने समय पर सर्वसाधारण की प्रत्येक भाषा साहित्यिक और साहित्यिक भाषा मृत अर्थात् नष्टप्राय और नवीन बोल-चाल की भाषा उत्पन्न होती रहती है।

यहाँ यह न भूलना चाहिए कि बोल-चाल की भाषा और बोली में बहुत अंतर है। बोल-चाल की भाषा किसी समय साहित्यिक भाषा हो सकती है, परंतु बोली साहित्यिक भाषा कभी नहीं हो सकती। किसी स्थान-विशेष के मनुष्यों की घरू भाषा को बोली कहते हैं। इसका क्षेत्र बहुत संकुचित होता है।

शाहजहाँपुरी, फरुखाबादी, खड़ी बोली का प्रारंभिक रूप, बलिया, गाजीपुर, गोरखपुर आदि की गोरखपुरी बोली, सीतापुरी, आदि इसके उदाहरण हैं। यहाँ दो-एक स्थानों की बोलियों के उदाहरण देने से यह बात भली भाँति समझ में आ जायगी। फरुखाबाद, "काल सूकवार को अमाउस हती, भोर गंगा नहान चलियो, लाला अपन तो दूर हते", आदि; हरदोई की बोली, "उद की दार में थोरो मिच्चा छोदओ, थोरी हदी छोहई और वह फुद-फुद होन लागी", आदि; सीतापुरी "हम न जइबा, बड़ो नीक मनई है, खिलोना ले लीन है, आज बच्चा को जीव नाई रहत है", आदि; बलिया की बोली, "कौनो चीठी बा? राउर कौनो चीठी ना बा, रउआँ कहा गईल रहलीं ? हमार बबुआ सूतल बाटे", आदि; प्रयाग काशी विंध्याचल आदि के पंडों की बोली, "तू कहाँ गया रहा", आदि; पटना के निकटवर्ती प्रदेश की बोली, "साहूकार पूछल कई डाकिया आयल हलई न? मौगी बैठल हलकई", आदि; जलालपुर, अकबरपुर आदि की बोली, "मोरा खता आवा रहा कि नाही?" "तोरी खुपड़ी पे टुपुआ जमइवा, आदि?" देहली मेरठ के निकटवर्ती प्रदेश की बोली, "पैड़ों (अर्थात् पैरों) पड़ूँ, आ रिया है, उल्ली तरफ आ, पल्ली तरफ बैठ, इंगे, उंगे, धोरे, अपने तईं, लेके नटयाँ, बव्यर बानी, भला मानुष आदि।" इन उदाहरणों से स्पष्टतः प्रकट है कि बोली से साहित्य का काम नहीं चल सकता।

५

अंग्रेजी महीनों के नाम

एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा दिन बीतता और महीने पै महीना आता चला जाता है, पर शायद आपने यह कभी न सोचा होगा कि इनका नामकरण कैसे हुआ। हमारे यहाँ दिन हैं सात—सोमवार, मंगल, बुद्ध, बृहस्पत, शुक्र, शनीश्चर और इतवार। अब देखना यह है कि इनका यह नाम पड़ा कैसे। आपने देखा होगा कि प्रायः लोग कहा करते हैं कि उसके ग्रह अच्छे हैं, उसके ग्रह खराब हैं। जन्म-पत्रियों में ग्रह होते हैं सूर्य, चंद्रमा, मंगल, बुद्ध, बृहस्पत, शुक्र, शनीश्चर। कभी कभी लोग यह भी कहा करते हैं कि 'उसका सितारा आजकल गर्दिश में है।' इससे प्रकट है कि हमारे भाग्य-चक्र को चलाने वाले अथवा हमारे भाग्य में हेर-फेर करने वाले ग्रह और आसमान में चक्कर लगाने वाले सितारे एक ही है। कोई कोई यह भी कहा करते हैं कि आजकल उसके दिन खराब हैं। इससे प्रतीत होता है कि दिन और ग्रह या सितारों में घनिष्ट संबंध है। मंगल, बुद्ध, बृहस्पत, शुक्र और शनीश्चर तो मिलते ही हैं, केवल इतवार और सोमवार में भेद है। इतवार का दूसरा नाम

रविवार और सोमवार का चंद्रवार भी है, उधर सूर्य का नाम रवि और चंद्रमा का सोम है। अतः हमारे दिनों के नाम भी ज्योतिष शास्त्र के अनुसार रक्खे गए हैं, परंतु अँग्रेजी महीनों के नामों का ज्योतिष से कोई संबंध नहीं है। अँग्रेजी महीनों के नाम रोम के आदि कालीन निवासियों ने रक्खे थे। अब हम एक-एक महीने को लेकर उसके नाम का इतिहास बताएँगे।

जनवरी :—यह नाम 'जेनस्' नामक देवता के नाम पर रक्खा गया है। यह प्राचीन रोमन लोगों का एक देवता था जिसके आगे और पीछे दो मुख थे। इस देवता की स्मृति में ही इस मास का नाम पड़ने का भी एक विशेष कारण है। रोमन लोग कोई भी का प्रारंभ करने के पूर्व और समाप्त करने के पश्चात् देवताओं की पूजा करते हैं। साल के बारह महीनों की भांति इनके देवता भी बारह हैं और दो मुख होने के कारण उनमें सर्व प्रमुख है 'जेनस'। अतः इसका वर्ष के पहले महीने से संबंध हो गया और उसका नाम करण इसी देवता के नाम पर हो गया।

फरवरी—यह लैटिन शब्द 'फेब्रु-अरियस' से बना है जिसका अर्थ है प्रायश्चित करना या पाप धोना। यह पहले साल का अंतिम महीना था, परंतु ४५५ ई० पू० से यह जनवरी के बाद गिना जाने लगा। संभव है यह किसी प्रकार के प्रायश्चित का ही फल हो। प्राचीन काल में रोम में एक देवता था 'लूपारकस'। इसके आदर-सत्कार के लिए 'फेब्रया' नामक

उत्सव मनाया जाता था। इस उत्सव की स्मृति में ही इस महीने का नाम भी फेब्रुअरी पड़ा था। फरवरी फेब्रुअरी का ही अपभ्रंश है।

मार्च :—किसी समय में साल में केवल दस महीने होते थे और यह साल का सब से पहला महीना था। यह मारस या मार्स नाम के युद्ध देवता की स्मृति में रक्खा गया था। वास्तव में यह रोम का एक बड़ा भारी योद्धा था। इसके एक हाथ में बर्छा और दूसरे में ढाल रहती थी। इसके मुख पर बड़ा तेज था और वह देखने में बड़ा भयंकर मालूम होता था जिस समय यह लड़ने खड़ा होता था, ऐसी मारकाट मचाता था कि खून की वर्षा सी होने लगती थी। इसकी वीरता के कारण लोग इसकी पूजा करने लगे। जिन दिनों इसकी पूजा होती थी उन्हीं दिनों वर्षा की भी झड़ी लगती थी। बाद में लोग इस महीने को ही 'मारस' कहने लगे जिससे बिगड़ कर मार्स और बाद में मार्च हो गया।

एप्रिल या अप्रैल :—एप्रिल लै० 'एप्रिलिस' शब्द से निकला है जिसका अर्थ है वनस्पति को जल-जीवन देकर हरा-भरा करने वाली ऋतु अर्थात् वसंत ऋतु। रोम में 'एप्रिल' एक देवी थी जो कि वसंत की रानी कहलाती थी और जिसकी कृपा से सब पेड़-पौधे हरे-भरे होकर लहलहाने लगते थे। मार्च के बाद पेड़ों में नवीन कोपलें आने लगती हैं, चारों तरफ हरा-भरा एक बड़ा सुंदर दृश्य दिखाई देने लगता है, अतः वनस्पति की देवी वसंत रानी के नाम पर इस मास का नाम

एप्रिल रख दिया गया गया। एप्रिल भारतवर्ष में आने पर खपरैल के सादृश्य अथवा अज्ञानता वश मुख-सुख के कारण अप्रेल या अपरैल हो गया।

मे या मई :—यह 'मइया' देवी के नाम पर मे या मई कहलाता है। यह मर्क्युरी की माता और एटलस देवता की लड़की थी। रोमन लोगों का विश्वास है कि एटलस सारी पृथ्वी को अपने कंधे पर धारण किए हुए है। हमारे भारतवर्ष में भी लोगों का विश्वास है कि शेषनाग जी के फन पर पृथ्वी रुकी हुई है। कुछ लोगों का कहना है कि पृथ्वी गाय के एक सींग पर खड़ी है और जब वह तनिक विश्राम लेने के लिए उसे एक सींघ से दूसरे सींघ पर बदलती है तभी हाला-चाला आता है। ये सब पौराणिक कथाएँ हैं, लेकिन वास्तव में बात यह है हिमालय पहाड़ को भाँति एटलस भी एक बड़ा भारी पहाड़ है। जिस प्रकार भारतवर्ष में लोग कहते हैं कि पृथ्वी हिमालय पहाड़ के कारण रुकी हुई है, उसी प्रकार यूरोप में रोम निवासी भी कहते हैं कि एटलस के कंधे पर रुकी हुई है। जिस प्रकार शंकर जा की स्त्री पार्वती जी हिमालय में पैदा होने के कारण (हिमाचल) की पुत्री थीं, *उसी प्रकार मइया भी एटलस की पुत्री रही होगी।* *यह* सात वहनें थी। जुपिटर देवता ने इसे प्रसन्न होकर तारका बना दिया था। शिशिफास नामक आदमी के साथ विवाह इन्हीं में से एक ने किया था, जिससे देवराज जुपिटर ने क्रोधित होकर उसे इतना कठिन दंड दिया कि वह भाग ही गया।

जून—इसका संबंध रोम की 'जूनो' देवी से है, लेकिन कुछ विद्वानों का मत है कि इसका नामकरण यूनियस नाम के एक प्रसिद्ध व्यक्ति के नाम पर हुआ है। यह बड़ा घमंडी और मूर्ख था। पता नहीं इससे लोग क्यों संबंधित करते हैं।

जुलाई—रोम में जूलियस सीजर एक बड़ा भारी सम्राट हुआ है। इसके राज्य में रोम का नाम चारों ओर प्रसिद्ध था। इंगलैंड को सभ्यता का दाता भी यही है। यूरोप वालों ने सभ्यता तथा विद्या रोम वालों से ही सीखी और उसके प्रसार का श्रेय जूलियस सीजर को ही है। जुलाई का संबंध इसी जूलियस सीजर से है। उसी के नाम पर इस महीने का नाम रक्खा गया है।

आगस्ट या अगस्त—इसका संबंध आगस्टस सीजर से है। यह जूलियस सीजर का लड़का था। यह अपने बाप से कम नामी नहीं था। इसने रोम को और भी आगे बढ़ाया। खेती, व्यापार और विद्या द्वारा रोम का नाम अन्य देशों में इसके नाम के समय से भी अधिक हो गया था। आगस्ट का नाम इसी के नाम पर पड़ा था। अगस्त, आगस्ट का ही अपभ्रंश अथवा हिंदी रूप है। आगस्टस ने पंचाग में भी कुछ परिवर्तन किए। पहले इस आठवें महीने में केवल ३० ही दिन होते थे। जब इसने देखा कि इसके महीने में उसके बाप के महीने से एक दिन कम है, तो इसने फेब्रुअरी के महीने से एक दिन काट कर अपने महीने में जोड़ दिया। तब से अगस्त में भी ३१ दिन होने लगे और फरवरी में एक

दिन कम हो जाने के कारण २६ ही दिन रह गए।

सेप्टेम्बर या सितम्बर—यह अंग्रेजी सेप्टेम्बर का हिंदी रूप समझना चाहिए। सेप्टेम्बर लै० सेप्टेम (Septem) से बना है जिसका अर्थ है सात। आज यह वर्ष का सातवाँ महीना है, परंतु जब पंचाग में केवल दस ही महीने थे जनवरी, फरवरी नहीं थे तो यह मार्च से गिनने पर सातवाँ महीना ही था। अतः यह सेप्टेम्बर कहलाता था। तब से इसका नाम सेप्टेम्बर पड़ गया और आज नवाँ महीना होने पर भी सितम्बर ही कहलाता है।

आक्टोबर या अक्तूबर—इसका इतिहास भी आक्टोबर की भाँति ही है। आक्टोबर लै० शब्द आक्टो (Octo) से बना है जिसका अर्थ है आठ। यह पुराने पंचाग का आठवाँ महीना था। अक्तूबर आक्टोबर का ही अपभ्रंश है।

नवम्बर या नोम्बर—भी लै० नोवेम (novem) से बना है जिसका अर्थ है नौ। यह पुराने पंचाग में जब साल में केवल दस महीने होते थे नवा महीना था। आज जनवरी फरवरी के जुड़ जाने से यह ग्यारहवाँ महीना हो गया है। हिंदी में अ और व का मिल कर औं हो जाना साधारण सी बात है और भाषा - विज्ञान के अनुसार है। अतः नवम्बर का हिंदी में नोंम्बर हो गया।

डेसेम्बर या दिसम्बर—इसका इतिहास भी ऊपर के तीन महीनों की भाँति ही है। यह लै० डेसेम (Decem) से बना है जिसका अर्थ है दस। पुराने पंचाग में जब वर्ष मार्च

से प्रारंभ होता था, तो यह अंतिम अथवा दसवाँ महीना था। अतः यह डेसेम्बर कहलाने लगा और आज भी साल में बारह महीने हो जाने पर भी उसी नाम से चला आता है। हिंदी में अंग्रेजी डी (*D*) का उच्चारण 'द' की भाँति होता है, अतः यह हिंदी में डेसेम्बर से दिसम्बर हो गया।

अब आप समझ गए होंगे कि अंग्रेजी महीनों के नामकरण का इतिहास हिंदुस्तानी महीनों के नामकरण के इतिहास से बिलकुल भिन्न है। एक एक महीने का अपना अलग अलग इतिहास है।

६

मनुष्यों का नामकरण

मनुष्यों के नामकरण का विषय बड़ा रोचक है। यों नाम तो नदी, पहाड़, देश, नगर आदि का भी रक्खा जाता है और उसके नामकरण का भी कोई न कोई कारण विशेष होता है जैसे यमुना कालिंद नाम के पहाड़ी प्रदेश से निकलने के कारण कालिंदी कहलाती है, हिमालय, हिम अर्थात् बर्फ़ का आलय अर्थात् घर होने के कारण हिमालय कहलाता है, यहाँ पर अत्यंत ऊँचा होने के कारण सदैव बर्फ जमी रहती है, हमारे देश का नाम भारत दुष्यंत के पुत्र भरत के नाम पर पड़ा, जबलपुर जाबालि ऋषि का नगर जाबालिपुर है जहाँ किसी समय जाबालि ऋषि का आश्रम था। जिस प्रकार इनके नामकरण के अनेक कारण हैं, उसी प्रकार मनुष्यों के नाम भी अनेक कारणों से रक्खे जाते हैं। यह विषय तो बहुत विस्तृत है परंतु यहाँ हम केवल भारतवर्ष को ही लेंगे और विभिन्न जातियों तथा स्थानों के मनुष्यों के नामकरण की विवेचना करेंगे।

नामकरण के कारण :— (१) किसी स्थान विशेष पर— आपने देखा होगा कि महाराष्ट्रियों के नाम के बाद में प्राय: 'कर' लगा रहता है जैसे भोपतकर, खंडेलकर, गोवलकर, इत्यादि। यह 'कर' स्थान अथवा गाँव का सूचक है और बताता है कि वह मनुष्य किस गाँव अथवा स्थान का रहने वाला है। उदाहरणार्थ चंद्रावर गाँव के रहने वाले चंद्रावरकर, वाकण के रहने वाले वाकणकर, इत्यादि कहलाते हैं। धारकर, नाडकर, इत्यादि इसी प्रकार के नाम हैं।

राजपूताने में 'कर' के स्थान में 'वाला' अथवा इया प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे नेवट के रहनेवाले नेवटिया, चुरु के रहनेवाले चुरुवाला, इत्यादि कहलाते हैं। हमारे संयुक्त प्रांत में भी प्राय: स्थान के नाम के बाद 'वाल' लगाया जाता है जैसे रामकृष्ण अग्रवाल, संगमलाल प्रयागवाल, मोहनलाल खंडेलवाल, इत्यादि। इनमें अग्र (आगरा), प्रयाग, खंडेल आदि स्थान के नाम हैं और 'वाल' स्थान सूचक प्रत्यय है।

मद्रास में तो और भी विचित्र प्रथा है। यहाँ प्राय: उस गाँव अथवा स्थान का नाम जिसका वह रहने वाला होता है उसके नाम के पहले लगा दिया जाता है। इतना ही नहीं बल्कि स्थान और अपने नाम के बीच में पिता का नाम भी होता है। वंश का नाम हमारे यहाँ की भाँति सब से बाद में आता है। उदाहरणार्थ मान लो किसी का नाम कुण्ड्री नागानंद गोपाल कृष्ण अय्यर है, तो इसमें कुण्ड्री गाँव का नाम,

नागानंद पिता का गोपाल कृष्ण अपना और अय्यर वंश का नाम है।

कभी कभी नाम के साथ स्थान का नाम हमारे यहाँ संयुक्त प्रदेश में भी जोड़ दिया जाता है जैसे बिसमिल इलाहाबादी, मीर लखनवी। प्रायः कवियों के नाम में ऐसा किया जाता है। कभी कभी दूसरे प्रसिद्ध नामों में भी जगह का नाम जोड़ दिया जाता है जैसे महमूद गजनवी।

(२) पूर्वजों (पुरखों) के नाम पर :—पूर्वजों के नाम कई प्रकार से सुरक्षित रहते हैं। हमारे यहाँ संयुक्त-प्रांत में पूर्वज का नाम प्रायः नाम के अंत में लगा दिया जाता है जैसे मोहन लाल गौतम, रूप नारायण भारद्वाज, इत्यादि। ये गौतम, भारद्वाज आदि पूर्वजों के नाम हैं। कभी कभी व्याकरण के चक्कर में पड़कर इनमें कुछ परिवर्तन भी हो जाता है जैसे भृगु ऋषि के पुत्र अथवा वंशज भार्गव कहलाते हैं, अत्रि ऋषि के वंशज अत्रेय कहलाते हैं, सरस्वत-पुत्र सारस्वत कहलाते हैं।

ईसाइयों में तो पूर्वज का नाम बाद में लगाने की प्रथा भी है जैसे यदि किसी का नाम ई० क्राइन या पा० पाल है तो क्राइन या पाल पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहेगा।

मारवाड़ियों में पूर्वज का नाम सूचक प्रत्यय 'का' है जैसे मान लो किसी पूर्वज का नाम खेम है तो उसके वंशज खेमका कहलायेंगे। इसी प्रकार गोविंद के वंशज गोविंदका, रामकृष्ण के रामकृष्णका आदि कहलायेंगे।

(३) *पेशों के नाम* :—इस प्रकार के नाम प्रायः बंगालियों में अधिक पाए जाते हैं। मुखर्जी, बनर्जी, भट्टाचार्य, इत्यादि इसी प्रकार के नाम हैं, मुख से पढ़ाने वाले मुखर्जी अथवा मुखोपाध्याय, चट्ट या चटशाला (पाठशाला) में पढ़ानेवाले चटर्जी या चट्टोपाध्याय, इत्यादि। ब्राह्मणों में उपाध्याय, ओझा आदि भी इसी प्रकर के नाम हैं, उपाध्याय संयुक्त प्रांत के पश्चिमी भाग में और ओझा पूर्वी भाग, बिहार, बंगाल आदि में पाए जाते हैं, परंतु वास्तव में ये दोनों शब्द हैं एक ही। ओझा उपाध्याय का संक्षिप्त रूप है और उपाध्याय पढ़ाने वाले को कहते हैं। पाण्डेय भी पंडित से बना है और इसी प्रकार का नाम है।

(४) *घटना के नाम पर* :—कभी कभी घटना विशेष के ऊपर भी नाम रक्खे जाते हैं जैसे कोई बुद्ध को पैदा हो तो उसका नाम बुद्ध सैन रख देते हैं। मंगल सैन, सोमनाथ, शुक्राचार्य आदि नाम मंगल, सोमवार, शुक्र आदि दिनों के नाम पर ही रक्खे गये हैं। बुद्धू, मंगलू या मंगरू, सुकरू आदि इन्हीं के अपभ्रंश हैं। बुधनी, मंगरी, मोंगी आदि स्त्री—सूचक नाम हैं। सकट नारायण, चौथो, पंजो, इत्यादि भी सकट त्यौहार, चौथ, पंचमी को पैदा होने के कारण रक्खे गए हैं।

किसी दिन विशेष को पैदा होने के अतिरिक्त अन्य घटनाओं पर भी नाम रक्खे जाते हैं जैसे मान लो पैदा होने पर किसी के हाथ में छः अंगुलियां हों तो उसका नाम छंगा मल, छंगो,

नागानंद पिता का गोपाल कृष्ण अपना और अय्यर का नाम है।

कभी कभी नाम के साथ स्थान का नाम हमारे यहाँ संयु प्रदेश में भी जोड़ दिया जाता है जैसे बिसमिल इलाहाबादि मीर लखनवी। प्रायः कवियों के नाम में ऐसा किया जाता है कभी कभी दूसरे प्रसिद्ध नामों में भी जगह का नाम जोड़ दिया जाता है जैसे महमूद गजनवी।

(२) पूर्वजों (पुरखों) के नाम पर :—पूर्वजों के नाम कई प्रकार से सुरक्षित रहते हैं। हमारे यहाँ संयुक्त-प्रांत में पूर्वज का नाम प्रायः नाम के अंत में लगा दिया जाता है जैसे मोहन लाल गौतम, रूप नारायण भारद्वाज, इत्यादि। ये गौतम, भारद्वाज आदि पूर्वजों के नाम हैं। कभी कभी व्याकरण के चक्कर में पड़कर इनमें कुछ परिवर्तन भी हो जाता है जैसे भृगु ऋषि के पुत्र अथवा वंशज भार्गव कहलाते हैं, अत्रि ऋषि के वंशज अत्रेय कहलाते हैं, सरस्वत-पुत्र सारस्वत कहलाते हैं।

ईसाइयों में तो पूर्वज का नाम बाद में लगाने की प्रथा भी है जैसे यदि किसी का नाम ई० ब्राउन या पा० पाल है तो ब्राउन या पाल पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहेगा।

मारवाड़ियों में पूर्वज का नाम सूचक प्रत्यय 'का' है जैसे मान लो किसी पूर्वज का नाम खेम है तो उसके वंशज खेमका कहलायेंगे। इसी प्रकार गोविंद के वंशज गोविंदका, रामकृष्ण के रामकृष्णका आदि कहलायेंगे।

(३) *पेशों के नाम* :—इस प्रकार के नाम प्रायः बंगालियों में अधिक पाए जाते हैं। मुखर्जी, बनर्जी, भट्टाचार्य, इत्यादि इसी प्रकार के नाम हैं, मुख से पढ़ाने वाले मुखर्जी अथवा मुखोपाध्याय, चट्ट या चटशाला (पाठशाला) में पढ़ानेवाले चटर्जी या चट्टोपाध्याय, इत्यादि। ब्राह्मणों में उपाध्याय, ओझा आदि भी इसी प्रकर के नाम है, उपाध्याय संयुक्त प्रांत के पश्चिमी भाग में और ओझा पूर्वी भाग, बिहार, बंगाल आदि में पाए जाते हैं, परंतु वास्तव में ये दोनों शब्द हैं एक ही। ओझा उपाध्याय का संक्षिप्त रूप है और उपाध्याय पढ़ाने वाले को कहते हैं। पाण्डेय भी पंडित से बना है और इसी प्रकार का नाम है।

(४) *घटना के नाम पर* :—कभी कभी घटना विशेष के ऊपर भी नाम रक्खे जाते हैं जैसे कोई बुद्ध को पैदा हो तो उसका नाम बुद्ध सैन रख देते हैं। मंगल सैन, सोमनाथ, शुक्राचार्य आदि नाम मंगल, सोमवार, शुक्र आदि दिनों के नाम पर ही रक्खे गये हैं। बुद्धू, मंगल्रू या मंगरू, सुकरू आदि इन्हीं के अपभ्रंश है। बुधनी, मंगरी, मोंगी आदि स्त्री—सूचक नाम है। सकट नारायण, चौंथो, पंजो, इत्यादि भी सकट त्यौहार, चौथ, पंचमी को पैदा होने के कारण रक्खे गए हैं।

किसी दिन विशेष को पैदा होने के अतिरिक्त अन्य घटनाओं पर भी नाम रक्खे जाते हैं जैसे मान लो पैदा होने पर किसी के हाथ में छः अंगुलियां हों तो उसका नाम छंगा मल, छंगो,

छंगा आदि हो जाता है। किसी के पैदा होते ही कोई चीज-वस्तु बहुत तेज हो जाय तो उसका नाम महँगू पड़ जाता है और यदि सस्ती हो जाय तो सस्तू पड़ जाता है, दानी कर्ण का नाम कर्ण अर्थात् कान से पैदा होने के कारण रक्खा गया था। यदि पैदा होने पर कोई बालक दुबला-पतला हो, तो उसका नाम सुक्खन और बड़े होने पर सुक्खन लाल हो जाता है, यदि कोई मरते मरते बचता है, तो उसका नाम रामरक्षपाल अथवा राम बख्श सिंह हो जाता है, यदि किसी की माता मरकर सौतेली मां आ जाती है तो वह माताबदल हो जाता है। जिन नामों में 'फेर' या बदल आदि लगा होता है जैसे माता फेर, रामफेर, शिवपलट, आदि, वे इसी प्रकार की घटनाओं के सूचक हैं। मुसलमानों में भी इसी प्रकार के नाम रक्खे जाते हैं जैसे खुदाबख्श, करीमबख्श, आदि।

(५) *तीर्थ यात्रा संबंधी* :—यदि कोई बालक उसके मां-बाप के तीर्थ यात्रा आदि से लौटते हुए पैदा होता है या उनकी किसी तीर्थ विशेष में आस्था होती है, तो उसका नाम प्रयागदत्त, काशीप्रसाद, अयोध्या प्रसाद, द्वारका प्रसाद, जगन्नाथ प्रसाद, रामेश्वर प्रसाद, गंगादीन, कामेश्वर प्रसाद, इत्यादि रख दिया जाता।

(६) *देवी-देवताओं के नामों पर* :—जिसको जिस देवी देवता का अथवा ईश्वर का जो नाम अच्छा लगता है वही नाम वह अपने बच्चे का रख देता है जैसे पुरुषोतमदास, कैलाशनाथ, शंकर प्रसाद, देवीशंकर, गौरीशंकर, रामचंद्र,

कृष्णचंद्र, विष्णु स्वरूप, ब्रह्मस्वरूप, सरस्वतीदेवी, गौरादेवी, इत्यादि। इस तरह के नाम मुसलमानों में भी रक्खे जाते हैं जैसे मोहम्मद हुसैन, हसन जहीर, मोहम्मद अली, इत्यादि। कभी कभी वड़े वड़े आदमियों के नामों पर भी नाम रक्खे जाते हैं जैसे अर्जुन सिंह, भीमसिंह, अकबर हुसैन इत्यादि।

कभी कभी किसी गुणविशेप पर भी नाम रक्खे जाते हैं जैसे सत्यदेव, सत्यवती, सत्यवान, जोरावर सिंह। मुसलमानों में तो ऐसे नामों की भरमार है जैसे शराफत हुसैन, राहत हुसैन, जाकिर हुसैन, इनायत खाँ, सलावत हुसैन, जहीरुद्दीन, जलालुउद्दीन, इत्यादि। बंगालियों में भी ऐसे नाम पाए जाते हैं जैसे ज्ञानेंद्र नाथ, अचल सिंह, जवाहर लाल, मोती लाल, इत्यादि भी इसी प्रकार के प्रेम में रक्खे हुए नाम हैं।

कभी कभी जानवरों पर नाम रक्खे जाते हैं जैसे शेर सिंह। ठाकुरों में बहादुरी दिखाने के लिए नाम के अंत में प्रायः 'सिंह' लगाने का चलन है। मोहन सिंह, गुरुबख्श सिंह, रणजीत सिंह, नारायण सिंह, छत्रपाल सिंह, इत्यादि इसी प्रकार के नाम हैं।

(७) *नामों की नकल* :—प्रायः मुसलमानी नामों में 'दीन', 'बख्श' अधिक लगा रहता है जैसे अलादीन, करीमुद्दीन, करीमबख्श, इत्यादि। इनको देखा-देखी हिंदुओं ने भी अपने नामों में 'दीन' या 'बख्श' जोड़ना आरंभ कर दिया है है जैसे रामदीन, शिवदीन, शीतलादीन, शीतला बख्श, माताबख्श इत्यादि।

बंगालियों के नाम बड़े सुंदर होते हैं जैसे अवनिकुमार, शरतकुमार, रमणिकांत, रासविहारी, इत्यादि। घोष, बोस, सिन्हा, कार, इत्यादि वंशों के नाम बाद में जोड़े जाते हैं।

कुछ जातियों में वंशों के नाम बड़े विचित्र हैं जैसे खत्रियों में कपूर का संबंध कपूर से, मेहरोत्रा का मिहिर अर्थात् सूर्य से भले ही हो, संभव है अरोड़े खत्री जाति का महल बनने के बाद बचे-खुचे इधर-उधर पड़े हुए रोड़े हों और भल्ले 'भल्ल' से भले ही निकले हो और भले आदमी हों, परंतु टंडन, खन्ना, सरीन का आदि संबंध किससे है, यह बताना कठिन है। इसी प्रकार कश्मीरियों में हंडू, गुर्टू, सप्रू, काटजू, किचलू, कीचक, शर्मा, इत्यादि का पता लगाना कठिन है। महाराष्ट्रियों में भी फाटके, मोघे, सप्रे, गाडसे, इत्यादि इसी प्रकार के नाम हैं।

यदि इस विषय में खोज और अध्ययन किया जाय तो एक एक देश अथवा जाति के नामों पर काफी कहा जा सकता है।

७

नगरों का नामकरण

जिस प्रकार मनुष्यों, वंशों तथा जातियों का इतिहास होता है, उसी प्रकार नगरों के पीछे भी एक पूर्ण इतिहास है। चीन में प्रायः एक ही मनुष्य विभिन्न परिस्थितियों तथा कालों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है जैसे सन याट सेन (Sun Yat Sen) बचपन में ताई च्योंग (Tai Cheong) कहलाता था। बड़े होकर नए ढंग का डाक्टर होने पर सन याट सेन कहलाने लगा, जिसके मानी हैं जिन्न या भूत की तरह स्वच्छंद। चूँकि यह डाक्टर चीन के पुराने तरीकों के विरुद्ध नए तथा विचित्र तरीकों से इलाज तथा चीरा-फाड़ी करता था, अतः इसे यात सेन (Yat Sen) कहने लगे और सन (Sun) इसके वंश की अल्ल इसके नाम के पहिले जुड़ गई। अंत में चीन में प्रजातंत्र राज्य (Chinese Republic) की नीव डालने के कारण वह 'फादर आव चाइनीज रिपब्लिक' (Father of Chinese Republic) के नाम से प्रसिद्ध होकर देवताओं की भाँति पूजा जाने लगा और सोमवार के दिन चीन में अब भी इसकी देवताओं के समान पूजा होती है। हमारे

यहाँ बचपन का सितई अथवा सितउ, बड़ा होने पर सीताराम, पढ़ - लिख जाने पर मिस्टर सीताराम, नौकर - चाकर होने पर मिस्टर अग्रवाल और साहित्य जनता अथवा सरकार की सेवा करने पर राय साहिब, राय बहादुर अथवा सर सीताराम अग्रवाल, इत्यादि हो जाता है। ठीक इसी तरह नगरों के नाम भी काल, राज्य तथा परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। उदाहरणार्थ अवध की राजधानी लखनऊ को श्री रामचंद्र के भाई लक्ष्मण जी ने बसाया था, अतः वह आरंभ में लक्ष्मण-पुरी कहलाता था। लक्ष्मण टीला अब भी इसका स्मारक है। बाद में लक्ष्मण जी के लाड़-प्यार के नाम लखन के ऊपर इसका नाम लखन-पुर हो गया। धीरे-धीरे यह लखनौती कहलाने लगा और आजकल लखनऊ कहलाता है। गाँव-गिराँव के अनपढ़ लोग नखलऊ भी कहते हैं। कभी कभी जैसा कि पीछे बताया जा चुका है ऐसा भी होता है कि हम किसी मनुष्य का कोई नाम विशेष किसी कारण से रख देते हैं जैसे बुद्ध के दिन पैदा होने वाले को बुद्धू, मंगल वाले को मंगलू या मंगल सेन, छः अंगुली वाले को छंगा, सकट चौथ के दिन पैदा होने वाले को सकट नारायण, रमजान शरीफ के दिनों में पैदा होने वाले को रमजानी या रमजान अली, बहुत सुंदर स्त्री को नूर जहाँ, इत्यादि। ठीक इसी तरह नगरों तथा प्रांतों के नाम भी रक्खे जाते हैं जैसे मुराद द्वारा बनाए जाने के कारण मुरादाबाद, पंजाब में एक जगह अमृत जैसे सुंदर जल वाला सिक्खों का तालाब होने से वह स्थान ही

अमृत-सर कहलाने लगा और वहाँ अमृतसर नगर बस गया, सामूगढ़ में औरंगजेब ने दारा पर फतह (विजय) पाई थी, अतः उसका नाम फतेहाबाद रख दिया गया, गली-कूँचों के नाम तो इस तरह प्रायः वहाँ के रहने वालों या रखने वालों के नाम पर रक्खे जाते हैं. जैसे हैविट रोड (Hewitt Road), कामता प्रसाद कक्कड़ रोड, बांके बिहारी रोड; खत्री कूचा, श्यामसिंह का बाड़ा, हुसैनाबाद, इत्यादि। ग्यास-उद्दीन बलबन ने तो दरबार के अवसर पर इसी तरह गली-कूचों के नाम रखकर अमीरों को प्रसन्न करके अपनी ओर खेंच लिया था। किसी नगर अथवा प्रांत के नाम का प्राचीन इतिहास खोजना कठिन अवश्य है, परंतु मनुष्यों के इतिहास से किसी प्रकार भी कम रोचक नहीं है। कुछ उदाहरणों से यह विषय स्पष्ट हो जायगा।

नगरों का इतिहास :— (१) *आगरा* :—इसका प्राचीन नाम 'अग्रवन' था जिसका अर्थ है 'आगे वाला वन या जंगल'। वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। ब्रज मंडल जहाँ पर कृष्ण जी का जन्म हुआ था और जहाँ वे अपनी गउओं के साथ विचरण करते और रास रचते थे प्राचीन काल में जंगलों अर्थात् वनों का एक समूह था और उसमें वृंदावन आदि अनेक वन थे। इतिहास तथा पुराण इसके साक्षी हैं कि यादवों द्वारा अनेक वन साफ करके रहने योग्य बनाए गए। प्राचीन काल में ब्रज मंडल का बड़ा महत्त्व था। सर्व प्रथम चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूप और सनातन ने वृंदावन को खोज

निकाला। बाद में अनेकों यात्री वृंदावन के दर्शनों के लिए आने-जाने लगे। ब्रज-मंडल के वनों में सब से पहला या अगला वन वहाँ पड़ता था जहाँ आजकल आगरा स्थित है, अतः यात्रियों ने इसका नाम 'अग्रवन' रख दिया। संभवतः बाद में वन अर्थात् जंगल कट जाने और यहाँ पर लोगों के बस जाने के बाद इसके नाम से 'वन' शब्द निकाल दिया गया और यह केवल 'अग्र' कहलाता रहा और बाद में बिगड़ कर 'आग्र', 'आग्रा' अथवा 'आगरा' हो गया। इसके जंगलों को साफ करा कर इसको नए सिरे से बहलोल लोदी ने १५ वीं शताब्दी के अंत में बसाया था और तभी से यह आगरा कहलाने लगा। इसके लड़के सिकंदर लोदी ने राजधानी ही दिल्ली से आगरा बदल दी, अतः इसका महत्त्व और बढ़ गया। इब्राहीम लोदी और बाबर ने भी इसी को अपनी राजधानी रक्खा और अकबर ने प्रसिद्ध किला और शाहजहाँ ने ताज-महल बनवाया। तब से यह एक प्रसिद्ध नगर हो गया।

(२) आमेर :—इसका प्राचीन नाम 'अम्बर' था जो कि 'अम्बरीप नगर' का अपभ्रंश है। यह प्राचीन काल में जयपुर प्रदेश की राजधानी था। पुराणों से यह पता चलता है कि राजा अम्बरीप यहां पर राज करते थे। इन्होंने एक नगर बसाया और अपने नाम पर उसका नाम 'अम्बरीप नगर' रक्खा, जो कि समय बीतने पर संक्षिप्त हो कर 'अम्बर' रह गया। संस्कृत से हिंदी में आने पर 'म्ब' का 'म' में परिवर्तन हो जाता है और उसके पूर्व का अक्षर दीर्घ हो जाता है जैसे 'अम्बु' से आम, निम्बु

से नीम, जम्बु से जामुन, इत्यादि। 'अम्बर' का 'आमर' हो जाना तो स्वाभाविक ही है। 'आमर' शब्द बोलने की सुविधा अथवा अर्थ का भद्दापन अर्थात् 'आ मर' दूर करने के लिए 'आमेर' हो गया। अकबर के समय में आमेर का राजा मानसिंह था जिसने यहाँ 'दिलाराम' बाग लगवाया।

(३) *बनारस* :—इसका प्राचीन नाम 'वाराणसि' था। इसका कारण यह था कि बनारस 'वर्णा' और 'असि' दो नदियों के संगम पर बसा है। प्राचीन काल में जब नदियों द्वारा व्यापार होता था, नदियाँ एक बड़ा भारी जलमार्ग थीं और उनका बड़ा महत्व था, अतः इन दोनों नदियों—वर्णा और असि—के नाम पर इस नगर का नाम 'वर्णा+असि = वर्णासि' हो गया। बाद में लोग इस संधि को भूल गए और उन्होंने 'वर्णा' के 'ण' को 'असि' के साथ मिला दिया अतः असि का तो 'णसि' हो गया और इधर 'वर' का 'वारा' हो गया। इस प्रकार 'वाराणसि' बन गया। संस्कृत 'ण' का हिंदी में 'न' हो जाना साधारण सी बात है जैसे फण से फन, गुण से गुन, बाण से बान, कर्ण से कान, पर्ण से पान प्राण से प्रान, इत्यादि। अतः 'वाराणसि' का 'वारानसि' और बाद में 'वारानस' हो जाना तो ठीक ही है। तत्पश्चात् 'र' और 'न' में वर्ण-विपर्य्य अर्थात् उलट-फेर हो गया और 'वारानस' का 'वानारस' हो गया जो कि बाद में बिगड़ कर 'बनारस' हो गया। अनपढ़ अथवा गाँव-गिराँव के लोगों द्वारा इस प्रकार के परिवर्तन तो भाषा में आए-दिन होते ही

रहते हैं। अब प्रश्न एक है कि बनारस को काशी क्यों कहते हैं? किसी समय पुरूरवा वंश में एक राजा 'काश' हुए जिन्हें काशीराज भी कहते थे। इन्होंने गंगा और गोमती के संगम पर एक नगर बसाया जिसका नाम अपने ऊपर काशी रक्खा। धीरे धीरे काशीराज का प्रभाव तथा प्रताप बढ़ता गया और साथ ही काशी का महत्व भी। अतः काशी के आस-पास का भाग भी काशी ही कहलाने लगा और काशी बनारस में कोई भेद न रह गया, यद्यपि दोनों में कई मील का अंतर है। बात यह है कि काशीराज बड़ा पुण्यात्मा राजा था। उसने अनेकों मंदिर तथा घाट बनवाए, अतः काशी की महिमा बढ़ गई और बाहरी यात्री बनारस को भी काशी कहने लगे। बाद में जब बनारस में रेशमी साड़ी तथा पीतल के वर्त्तनों का व्यापार बढ़ गया, तो बनारस की ख्याति बढ़ने लगी और बनारस एक प्रसिद्ध नगर हो गया और काशी उसका एक बड़ा मोहल्ला मात्र रह गया, यद्यपि यात्री तथा पंडे लोग अब भी बनारस को काशी ही कहते हैं और एक बड़ा पुण्य-क्षेत्र मानते हैं।

(४) *अलीगढ़* :—इसका प्राचीन नाम कोइल था। कुछ लोग तो अब भी इसे कोइल ही कहते हैं। इसका नाम कोइल पड़ने का कारण यह था कि यहां पर कृष्ण के भाई बलराम ने 'कोल' नाम के राक्षस को मारा था। अतः इसका नाम 'कोल' पड़ गया। बाद में इसमें 'इ' का आगम हो गया और और यह कोइल कहलाने लगा। मुसलमान काल में अली

नाम के किसी अमीर अथवा बादशाह ने यहाँ अपना किला अर्थात् गढ़ बनवाया। तब से इसका नाम 'अलीगढ़' हो गया।

(५) मथुरा :—इसका प्राचीन नाम 'मधुवन' था जिसका अर्थ है मधु का वन अर्थात् जंगल। मथुरा से पाँच मील की दूरी पर महोली नामक स्थान में अब भी मधुवन नाम का एक जंगल है जो कि प्राचीन मधुवन का स्मारक है। पुराने समय में जब राम राज्य था तो यहाँ पर एक बड़ा भारी जंगल था जिसमें मधु नाम का एक राक्षस रहता था। यह जंगल उसी के नाम पर 'मधुवन' कहलाता था। वह स्थान जहाँ मधु तथा उसके वंश वाले तथा अन्य राक्षस रहते थे 'मधुपुरी' अर्थात् मधु का नगर कहलाता था। यह ठीक वहाँ पर था जहाँ आजकल महोली है। रामचंद्र के समय में इसका लड़का लवन इस जंगल में राज करता था। राम के भाई शत्रुघ्न ने इसे मार कर जंगल साफ करा कर वहाँ नगर बसाया। यह नगर बाद में बढ़ कर वह सब नगर बस गया जिसे आज कल मथुरा नगरी कहते हैं। अब प्रश्न यह है कि मधुवन मथुरा कैसे हो गया। रामायण के उत्तरकांड में मथुरा का नाम 'मधुरा' दिया है। संभव है बाद में मधुवन अथवा मधुपुरी संक्षिप्त होकर मधुरा हो गया हो। दक्षिण भारत में मद्रास प्रांत में पांड्य राज्य की राजधानी भी जिसे कुलशेखर' नामक राजा ने बसाया था 'मधुरा अथवा मदुरा' कहलाती थी। अतः दोनों में भेद करने के लिए उसे दक्षिण मधुरा कहते

रहते हैं। अब प्रश्न एक है कि बनारस को काशी क्यों कहते हैं? किसी समय पुरूरवा वंश में एक राजा 'काश' हुए जिन्हें काशीराज भी कहते थे। इन्होंने गंगा और गोमती के संगम पर एक नगर बसाया जिसका नाम अपने ऊपर काशी रक्खा। धीरे धीरे काशीराज का प्रभाव तथा प्रताप बढ़ता गया और साथ ही काशी का महत्व भी। अतः काशी के आस-पास का भाग भी काशी ही कहलाने लगा और काशी बनारस में कोई भेद न रह गया, यद्यपि दोनों में कई मील का अंतर है। बात यह है कि काशीराज बड़ा पुण्यात्मा राजा था। उसने अनेकों मंदिर तथा घाट बनवाए, अतः काशी की महिमा बढ़ गई और बाहरी यात्री बनारस को भी काशी कहने लगे। बाद में जब बनारस में रेशमी साड़ी तथा पीतल के बर्त्तनों का व्यापार बढ़ गया, तो बनारस की ख्याति बढ़ने लगी और बनारस एक प्रसिद्ध नगर हो गया और काशी उसका एक बड़ा मोहल्ला मात्र रह गया, यद्यपि यात्री तथा पंडे लोग अब भी बनारस को काशी ही कहते हैं और एक बड़ा पुण्य-क्षेत्र मानते हैं।

(४) *अलीगढ़* :—इसका प्राचीन नाम कोइल—था। कुछ लोग तो अब भी इसे कोइल ही कहते हैं। इसका नाम कोइल पड़ने का कारण यह था कि यहाँ पर कृष्ण के भाई बलराम ने 'कोल' नाम के राक्षस को मारा था। अतः इसका नाम 'कोल' पड़ गया। बाद में इसमें 'इ' का आगम हो गया और और यह कोइल कहलाने लगा। मुसलमान काल में अली

नाम के किसी अमीर अथवा बादशाह ने यहाँ अपना किला अर्थात् गढ़ बनवाया। तब से इसका नाम 'अलीगढ़' हो गया।

(५) मथुरा :—इसका प्राचीन नाम 'मधुवन' था जिसका अर्थ है मधु का वन अर्थात् जंगल। मथुरा से पाँच मील की दूरी पर महोली नामक स्थान में अब भी मधुवन नाम का एक जंगल है जो कि प्राचीन मधुवन का स्मारक है। पुराने समय में जब राम राज्य था तो यहाँ पर एक बड़ा भारी जंगल था जिसमें मधु नाम का एक राक्षस रहता था। यह जंगल उसी के नाम पर 'मधुवन' कहलाता था। वह स्थान जहाँ मधु तथा उसके वंश वाले तथा अन्य राक्षस रहते थे 'मधुपुरी' अर्थात् मधु का नगर कहलाता था। यह ठीक वहाँ पर था जहाँ आजकल महोली है। रामचंद्र के समय में इसका लड़का लवन इस जंगल में राज करता था। राम के भाई शत्रुघ्न ने इसे मार कर जंगल साफ करा कर वहाँ नगर बसाया। यह नगर बाद में बढ़ कर वह सब नगर बस गया जिसे आज कल मथुरा नगरी कहते हैं। अब प्रश्न यह है कि मधुवन मथुरा कैसे हो गया। रामायण के उत्तरकांड में मथुरा का नाम 'मधुरा' दिया है। संभव है बाद में मधुवन अथवा मधुपुरी संक्षिप्त होकर मधुरा हो गया हो। दक्षिण भारत में मद्रास प्रांत में पांड्य राज्य की राजधानी भी जिसे कुलशेखर' नामक राजा ने बसाया था 'मधुरा अथवा मदुरा' कहलाती थी। अतः दोनों में भेद करने के लिए उसे दक्षिण मधुरा कहते

रहते हैं। अब प्रश्न एक है कि बनारस को काशी क्यों कहते हैं? किसी समय पुरुरवा वंश में एक राजा 'काश' हुए जिन्हें काशीराज भी कहते थे। इन्होंने गंगा और गोमती के संगम पर एक नगर बसाया जिसका नाम अपने ऊपर काशी रक्खा। धीरे धीरे काशीराज का प्रभाव तथा प्रताप बढ़ता गया और साथ ही काशी का महत्व भी। अतः काशी के आस-पास का भाग भी काशी ही कहलाने लगा और काशी बनारस में कोई भेद न रह गया, यद्यपि दोनों में कई मील का अंतर है। बात यह है कि काशीराज बड़ा पुण्यात्मा राजा था। उसने अनेकों मंदिर तथा घाट बनवाए, अतः काशी की महिमा बढ़ गई और बाहरी यात्री बनारस को भी काशी कहने लगे। बाद में जब बनारस में रेशमी साड़ी तथा पीतल के बर्त्तनों का व्यापार बढ़ गया, तो बनारस की ख्याति बढ़ने लगी और बनारस एक प्रसिद्ध नगर हो गया और काशी उसका एक बड़ा मोहल्ला मात्र रह गया, यद्यपि यात्री तथा पंडे लोग अब भी बनारस को काशी ही कहते हैं और एक बड़ा पुण्य-क्षेत्र मानते हैं।

(४) *अलीगढ़* :—इसका प्राचीन नाम कोइल था। कुछ लोग तो अब भी इसे कोइल ही कहते हैं। इसका नाम कोइल पड़ने का कारण यह था कि यहाँ पर कृष्ण के भाई बलराम ने 'कोल' नाम के राक्षस को मारा था। अतः इसका नाम 'कोल' पड़ गया। बाद में इसमें 'इ' का आगम हो गया और और यह कोइल कहलाने लगा। मुसलमान काल में अली

नाम के किसी अमीर अथवा बादशाह ने यहाँ अपना किला अर्थात् गढ़ बनवाया। तब से इसका नाम 'अलीगढ़' हो गया।

(५) *मथुरा* :—इसका प्राचीन नाम 'मधुवन' था जिसका अर्थ है मधु का वन अर्थात् जंगल। मथुरा से पाँच मील की दूरी पर महोली नामक स्थान में अब भी मधुवन नाम का एक जंगल है जो कि प्राचीन मधुवन का स्मारक है। पुराने समय में जब राम राज्य था तो यहाँ पर एक बड़ा भारी जंगल था जिसमें मधु नाम का एक राक्षस रहता था। यह जंगल इसी के नाम पर 'मधुवन' कहलाता था। वह स्थान जहाँ मधु तथा उसके वंश वाले तथा अन्य राक्षस रहते थे 'मधुपुरी' अर्थात् मधु का नगर कहलाता था। यह ठीक वहाँ पर था जहाँ आजकल महोली है। रामचंद्र के समय में इसका लड़का लवन इस जंगल में राज करता था। राम के भाई शत्रुघ्न ने इसे मार कर जंगल साफ करा कर वहाँ नगर बसाया। यह नगर बाद में बढ़ कर वह सब नगर बस गया जिसे आज कल मथुरा नगरी कहते हैं। अब प्रश्न यह है कि मधुवन मथुरा कैसे हो गया। रामायण के उत्तरकांड में मथुरा का नाम 'मधुरा' दिया है। संभव है बाद में मधुवन अथवा मधुपुरी संक्षिप्त होकर मधुरा हो गया हो। दक्षिण भारत में मद्रास प्रांत में पांड्य राज्य की राजधानी भी जिसे कुलशेखर' नामक राजा ने बसाया था 'मधुरा अथवा मदुरा' कहलाती थी। अतः दोनों में भेद करने के लिए उसे दक्षिण मथुरा

थे। दक्षिण मधुरा आज कल मदुरा कहलाती है। संभव है इसी तरह यू. पी. की मधुरा भी इसी भेद को स्पष्ट करने के लिए मदुरा और बाद में बिगड़ कर मथुरा बन गया हो। चूंकि हिंदी में ध तथा थ में लिखने में अधिक अंतर नहीं है और फिर प्राचीन काल में जब छापा आदि न था तो यह अंतर और भी अस्पष्ट था, अतः मधुरा का मथुरा हो जाना कठिन नहीं था। चूँकि यह शौर सेन राजाओं की राजधानी था, अतः इसे जैन लोग 'सोरी पुर' अथवा 'शौर्य पुर' भी कहते हैं। कृष्ण की जन्म भूमि होने और उनके द्वारा राजा कंश के मारे जाने के कारण इसकी ख्याति और भी बढ़ गई।

(६) *सारनाथ* :—इसका प्राचीन नाम 'सारंगनाथ' था। 'सारनाथ' सारंगनाथ' का ही संक्षिप्त रूप है। सारंग नाथ दो शब्दों के मेल से बना है 'सारंग' और 'नाथ'। 'सारंग' के अर्थ हैं 'हिरन' और 'नाथ' माने 'स्वामी' अथवा मालिक। इस प्रकार 'सारंगनाथ' के माने हुए 'हिरनों का स्वामी अथवा हिरन-पति या हिरनों का राजा। प्राचीन काल में वहाँ पर जहाँ आजकल सारनाथ स्थित है एक बड़ा भारी जंगल था जिसमें बहुत से हिरन रहते थे। यदि इस जंगल को हिरनों का का घर कहें तो अनुचित न होगा। यही कारण था कि इसे "मृगदा" अर्थात् हिरनों का घर कहते भी थे। इन हिरनों का एक राजा भी था जिसका बड़ा भारी घर था। कहते हैं कि यह हिरन-पति बोधिसत्व का अवतार था और इसकी बड़ी

ख्याति थी। उसे सारंनाथ कहते थे। बाद में उसके रहने के स्थान अथवा जंगल को ही सारंगनाथ कहने लगे। धीरे-धीरे सारंगनाथ बिगड़ कर संक्षिप्त होकर सारनाथ ही रह गया। बुद्ध काल में इसकी ख्याति और भी बढ़ गई।

(७) मारवाड़ :—इसका प्राचीन नाम 'नलपुर' था ज. कि राजा नल की राजधानी था। राजा नल ने इसे बसाया था, अतः यह नल-पुर कहलाता था। बाद में यह बिगड़ कर 'नरपुर' और फिर 'नरवर' हो गया। 'नरवर' नव नागों की राजधानी रहा। समय बीतने पर नरवर से बिगड़ कर मारवार हो गया। र और ड में सदैव परिवर्तन होता रहता है, अतः यह मारवार से मारवाड़ हो गया।

(८) पटना :—इसका पुराना नाम पाटलिपुत्र था। इसे मगध के राजा अजातशत्रु ने ४८० ई० पूर्व बनवाया था। मगध की राजधानी राजगृह थी और वहीं पर राज महल भी थे। इसी कारण इसे राजगृह अर्थात् राजा का घर कहते भी थे। वैशाली के वृज्जिस राजाओं के हमलों से बचने के लिए अजातशत्रु ने राजमहल गंगा के उस पार बनवाए और उस स्थान का नाम वहाँ की पाटल देवी अथवा पाटलेश्वरी के नाम पर पाटलिपुत्र रक्खा। अजातशत्रु के पोते उदयाख ने इसे अपनी राजधानी ही बना लिया और धीरे धीरे इसकी महिमा बढ़ने लगी और यह एक बड़ा नगर हो गया जैसा कि बुद्ध भगवान ने भविष्य वाणी की थी। ७५० ई० में गंगा और सोन नदियाँ इसका बहुत सा भाग बहा ले गईं, लेकिन अलबेरुनी के आने के समय अर्थात्

१० वीं शताब्दी के अंत तक यह पाटलिपुत्र ही कहाता रहा। बाद में इसे पाटलिपुर कहने लगे। पट्टन के अर्थ नगर हैं। संभवतः पाटलिपुर के नाम करण का कारण भूल कर अथवा इसकी व्यत्पत्ति न समझने के कारण लोग इसे पट्टनपुर कहने लगे, जिसका संक्षिप्त होकर पट्टन रह गया। संस्कृत से हिंदी में आने पर ट्ट का ट और अंतिम अक्षर का दीर्घ हो जाना स्वाभाविक है जैसे पट्टिल से पटला, कुट्टिल से कुटनी इत्यादि। अतः पट्टन का पटना हो गया।

(६) जौनपुर :—इसका प्राचीन नाम यवनपुर था। १३६० ई० में दिल्ली के बादशाह फीरोज ने यहाँ पर किला बनवाया और इसे बसाया और इसका नाम अपने चचेरे भाई फकीर उद्दीन जोवन के ऊपर 'जौनपुर' रक्खा। १४१८ ई० में सुलतान इब्राहीम ने एक बौद्ध मठ के मसाले से अठला मसजिद बनवाई। फिर १४८० ई० में सुलतान महमूद की बीबी 'रज़ी' ने लाल दरवाजा मसजिद बनवाई। १५ वीं शताब्दी में खाँ जहाँ ने जौनपुर में ही अपना महल बनाया। इब्राहीम शर्की के समय में यह शिक्षा का एक बड़ा केंद्र हो गया। शेरशाह सूरी ने यहीं पर एक कालिज में शिक्षा पाई थी। इस प्रकार यह यवनों का एक नगर हो गया और आज भी यहाँ यवनों की आबादी अधिक है। यही कारण है कि लोग इसे 'जोवनापुर' की जगह 'यवनपुर' कहने लगे। हिंदी 'य' और 'ज' में सदा परिवर्तन होता रहता है जैसे यमुना से जमुना, यम से जम, यश से जस, यति से जती, इत्यादि। अतः यवनपुर का बिगड़ कर

'जवनपुर' हो गया। 'अव' का 'ओ', 'औ' में प्रायः परिवर्तन होता रहता है जैसे जव से जौ, तव से तो, इत्यादि। अतएव 'जवनपुर' से 'जौनपुर' हो गया।

(१०) *लाहौर* :—इसका नाम लवपुर था। इसे रामचंद्र जी के पुत्र लव ने वसाया था और उसी के नाम पर यह लवपुर कहलाता था। लवपुर से बिगड़ कर यह 'लाहौर' हो गया।

मुद्रक—अग्रवाल प्रेस, प्रयाग